दीपावली पर्व कथाएं

(पौराणिक कथाओं पर आधारित)

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
ऑस्ट्रेलिया - ६०२५

श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्था है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्थान इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

दीपावली पर्व कथाएं

(पौराणिक कथाओं पर आधारित)

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ
३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, पर्थ
ऑस्ट्रेलिआ – ६०२५
Website: https://shriramkatha.org
Email: srkperth@outlook.com

क्रमिका

दीपावली दिवस - कार्तिक मास अमावस्या.....5
प्रथम पूज्य भगवान् श्री गणेश.....8
समुद्र मंथन और माँ लक्ष्मी का प्रकाट्य.....10
भक्त प्रह्लाद का राज्याभिषेक.....22
श्री राम का राज्याभिषेक.....28
नरकासुर वध.....42
दीपावली पूजन विधि.....46
कथाकार.....52

दीपावली दिवस - कार्तिक मास अमावस्या

“दादा जी, दादा जी, आप उठो ना, आप अभी तक सो रहें हैं,” मेरे पौत्र-पौत्रियों ने मेरे बिस्तर में घुस प्रातः होने से पूर्व ही मुझ को झकझोड़ कर उठा दिया।

कार्तिक मास की हल्की हल्की सर्दी पड़ना प्रारम्भ हो गयी थी। बुढ़ापे का शरीर और रजाई की गरमाहट, इन दोनों का कुछ अधिक ही मिलन है। लेकिन बच्चे तो बच्चे ही हैं, और वह भी पौत्र-पौत्री। सत्य ही तो है कि ब्याज मूलधन से भी अधिक प्रिय होता है। बच्चों की खिलखिलाहट ने निद्रा देवी को दूर भगा दिया। झट से उठे, और चुम्बन लिया बच्चों का।

प्रेम से बच्चों के बाल सहलाते हुए बोले, ‘क्या बात है बेटा? क्या नींद नहीं आ रही?’

"दादा जी, कल दीपावली है न? मां कह रही थीं कि कल कार्तिक मास की अमावस्या है। अतः शीघ्र सुबह उठकर, नहा धोकर, नए कपड़े धारण कर, पूजा गृह में जा कर गृह मंदिर में माथा टेक कर ही कोई दूसरा कार्य प्रारम्भ करना। ऐसा क्यों दादा जी? माँ से पूछना चाहा तो बहुत व्यस्त हैं कल की तैयारी में। कहा जाओ, और दादा जी से पूछो। अब आप हमें बताएं न कि कल ऐसा हम क्यों करें और यह दीपावली क्यों मनाई जाती है?, मेरी बड़ी पौत्री बोली।

बच्चों के इस भोले भाले प्रश्न ने मुझे प्रफुल्लित कर दिया। दादा जी होने का गर्व हुआ। इसीलिये तो बड़े बूढ़े होते हैं। बच्चों को संस्कार दें। अपनी संस्कृतियों से अवगत कराएं और उत्तम मानव बनने की शिक्षा दें।

'अवश्य बेटे, मैं आज तुम्हें इस महान पर्व की उत्पत्ति और इसका कारण बताऊंगा। ध्यान से सुनो” बोले दादा जी।

दादा जी ने बोलना प्रारम्भ किया, ‘जानते हो, हमारे महान नेता प्रधानमंत्री माननीय श्री मोदी जी ने स्वच्छता अभियान चला रखा है। भारत को वह एक विकाशशील, स्वच्छ एवं सोने की चिड़िया कहलाने वाला देश फिर से बनाना चाहते हैं। कितना अथक प्रयास कर रहें वह इस के लिए। निद्रा का भी समय उनके पास नहीं है। दिन रात कार्यरत रह लोगों को प्रोत्साहित करते रहते हैं। इस स्वच्छता का प्रतीक ही यह दीपावली पर्व है। तुमको पता ही है कि कुछ दिनों से तुम्हारे माता पिता घर को स्वच्छ

करने के लिए कितना प्रयास कर रहें हैं। सारे घर की पुताई की है। सब घर का सामान स्वच्छ कर एक बार फिर से सजाया है। स्वच्छता का महत्व तुम्हें प्रतिदिन तुम्हारे विद्यालय में भी तुम सब को सिखाया जाता है। स्वच्छता ही बीमारियों को दूर रख स्वस्थ रहने का एक मात्र उपाय है। बस, यही दीपावली पर्व मनाने का सब से मुख्य कारण है। स्वच्छ रहो। स्वच्छता से भगवान् मिलते हैं। स्वच्छता से जीवन दान मिलता है। स्वच्छता से ही धन धान्य एवं जीवन प्रगति का मार्ग मिलता है।'

दादा जी आगे बोले, 'पुत्र, पुत्रियो, दीपावली पर्व मनाने के पौराणिक कथाओं के अनुसार अनेक कारण हैं। धार्मिक पौराणिक कथाओं के अनुसार इस दिन सत्य की असत्य पर भी कई प्रकार से जीत हुई थी। "सत्यमेवजयते", यह सदैव हमको स्मरण रहे, यह ही इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है। सतयुग में भगवान् विष्णु ने समुद्र मंथन का आवाहन कर, देवताओं को अमृत पान कराया ताकि वह असुरों पर विजय प्राप्त कर सत्य की स्थापना करा सकें। सतयुग में ही भगवान् नरसिंह अवतार ने हिरण्याक्ष एवं हिरणकश्यपु जैसे दैत्य वंश के असुर प्रवृतियों के सम्राटों का वध कर भक्त प्रह्लाद जैसे धार्मिक, न्याय प्रिय एवं कुशल महापुरुष को पृथ्वी के सिंहासन पर आसीन किया। त्रेता युग में भगवान् राम अवतार ने रावण, कुम्भकरण इत्यादि असुर प्रवृति के सम्राटों का वध कर राम राज्य स्थापित किया। द्वापर युग में भगवान् कृष्ण अवतार ने कंस जैसे दुराचारी सम्राट का वध किया। इसके साथ ही अनाचारी कौरवों को महाभारत युद्ध में पांडवों की सहायता से पराजित कर धर्मराज युधिष्ठिर को सिंहासन पर आसीन किया, जिस से एक बार फिर सत्य एवं न्याय का शासन स्थापित हुआ। कलियुग में अनेक संत जैसे स्वामी भगवान् रामानंद जी, संत कबीर दास जी, संत गोस्वामी तुलसीदास जी, संत शिर्डी साईबाबा इत्यादि ने सत्य प्राप्ति के उदाहरण हमारे समक्ष प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रसन्नता में एवं उनके महान कार्यों को स्मरण कर हम यह दीपावली का पर्व मनाते हैं।'

'दादा जी, दादा जी, ऐसे नहीं, हमको विस्तार से कहानियां सुनाईये न। हम देखते हैं कि आप सब आज दीपावली के दिन भगवान् गणेश एवं माँ लक्ष्मी का पूजन करते हैं। ऐसा क्यों दादा जी? वह पड़ोस का मुन्ना है न दादाजी, वह कह रहा था कि इस दिवस भगवान् श्री राम, माता सीता जी एवं भाई श्री लक्ष्मण जी के साथ १४ वर्ष के वनवास के बाद अपने राज्य अयोध्या लौटे थे, अतः उनके स्वागत में अयोध्यावासीओं ने दीप मालाएं जलाईं। वह तो ठीक है, परन्तु भगवान् गणेश एवं माँ लक्ष्मी का पूजन, अवश्य ही कोई इसका विशेष कारण रहा होगा। हमें विस्तारपूवर्क बताइए न दादा जी', मेरी बड़ी पौत्री ने पुछा।

दादा जी पुनः बोले, 'अवश्य बेटा। मैं तुम्हें इन सब के कारण विस्तारपूर्वक बतलाऊँगा। भगवान् श्री राम, माता सीता एवं श्री लक्ष्मण जी इसी दिवस अपना १४ वर्ष का वनवास काट, रावण, कुम्भकरण जैसे महान बलशाली असुरों का वध कर, पृथ्वी पर शान्ति स्थापित कर अवश्य लौटे थे। परन्तु वह तो त्रेता युग था। भगवान् गणेश एवं माता लक्ष्मी की पूजा इस दिवस पर तो उससे भी सहस्त्रों वर्ष पूर्व सतयुग के समय से ही जब देव और दानवों ने समुद्र मंथन किया, १४ रत्नों की प्राप्ति की, जिसमें माता लक्ष्मी का प्रकाट्य भी हुआ, उसी समय से होती चली आ रही है। माता लक्ष्मी के समुद्र मंथन से प्रगट होने के तुरंत पश्चात भगवान् विष्णु ने उनसे पुनर्विवाह किया। उनके पुनर्विवाह के उत्सव, विवाह जयंती, पर हम माँ लक्ष्मी की स्तुति कर उनसे कृपा याचना करते हैं ताकि इस सांसारिक जीवन में हमें धन, धान्य, वैभवता एवं ऐश्वर्यता प्राप्त हो। तुम तो जानते ही हो कि धन, धान्य, वैभवता एवं ऐश्वर्यता की देवी माँ लक्ष्मी ही है।'

'माँ लक्ष्मी का पुनर्विवाह? क्या वह पहले से ही भगवान् विष्णु से विवाहित थीं? फिर क्या कारण हुआ जिससे उन्हें अपने ही पति भगवान् विष्णु से पुनर्विवाह करना पड़ा? फिर माँ लक्ष्मी की स्तुति तो समझ में आती है, लेकिन भगवान् गणेश की स्तुति क्यों?' एक साथ सभी बच्चे बोल पड़े।

दादा जी शांत होकर बोले, 'पुत्र, पुत्रियों, माँ लक्ष्मी के समुद्र मन्थन पर प्रगट होने की, उनका भगवान् विष्णु से पुनर्विवाह इत्यादि की मैं तम्हें सब कथा सुनाऊँगा। सर्व प्रथम गणेश पूजन क्यों किया जाता है, और माँ लक्ष्मी की स्तुति से भी पूर्व क्यों किया जाता है, यह कथा सुनो। भगवान् गणेश प्रथम पूज्य है। अर्थात, किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने से पहले भगवान् गणेश की स्तुति की जाती है। दीपावली पर्व पर यद्यपि माँ लक्ष्मी की पूजा करना मुख्य उद्देश्य है, परन्तु उस उद्देश्य की पूर्ति एवं उसमें सफलता तब तक प्राप्त नहीं हो सकती जब तक कि प्रथम पूज्य भगवान् श्री गणेश की स्तुति न की जाए।'

प्रथम पूज्य भगवान् श्री गणेश

दादा जी ने अपनी कथा क्रमागत रखी, 'पुत्र, पुत्रीओ, अवश्य ही समस्त देवतागण पूज्यनीय होते हैं, परन्तु एक बार देवताओं में परस्पर विवाद हो गया कि उन सब में सर्वश्रेष्ठ कौन है जिसे प्रथम पूज्य का पद मिले? प्रत्येक देव अपने को श्रेष्ठ बताने पर तुला हुआ था। जब कोई निष्कर्ष नहीं निकला तो सभी देवता एक स्थान पर एकत्रित होकर पितामह ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। पितामह ब्रह्मा जी उस समय अपने कार्य में पूर्णतया व्यस्त थे। वह सृष्टि निर्माण में लगे हुए थे। इस समस्या पर गंभीरता से विचार करने एवं निर्णय लेने का उनके पास समय नहीं था। अतः उनके मुख से निकला कि जो भी ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा करके सर्व प्रथम उनके पास पहुँच जाएगा, वही सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम पूज्य माना जाएगा।'

'अब क्या था? सभी देवता अपने अपने वाहनों पर चढ़कर दौड़े। सबसे पीछे रह गए श्री गणेश जी। एक तो उनका भारी भरकम शरीर और दूसरे, छोटा वाहन मूषक। उन्हें लेकर बेचारा चूहा कितनी देर तक दौड़ता? अन्य देवों की भांति श्री गणेश जी के मन में भी प्रथम पूज्य बनने की बड़ी उत्कंठा थी। अत: अपने को सबसे पीछे देख वह उदास हो गए।'

'संयोग की बात, उसी समय सदैव पर्यटन में रहने वाले देवर्षि नारद जी अपने खड़ाऊ खटकाते, वीणा बजाते, भगवद्-गुण गाते उधर से निकले। गणेश जी को उदास देखकर नारद जी को दया आ गई। उन्होंने पूछा, ''हे पार्वतीनन्दन, आज आपका मुखमण्डल उदास क्यों है?'

'गौरीनन्दन श्री गणेश जी ने उन्हें अपनी पूरा समस्या बता दी। देवर्षि नारद जी हंस दिए और बोले, ''आप तो जानते ही हैं कि माता साक्षात् ब्रह्माण्ड होती हैं और पिता परमात्मा स्वरूप होते हैं। इसमें भी आपके पिता परमतत्व के भीतर तो अनन्त स्थित हैं।'

'श्री गणेश जी तुरंत देवर्षि नारद जी का आशय समझ गए। वह सीधे कैलाश पर्वत पहुंचे और माँ पार्वती की अंगुली पकड़कर छोटे शिशु की भांति अपनी ओर खींचते हुए कहने लगे, 'माँ, पिताजी तो समाधि में तल्लीन हैं, पता नहीं उन्हें उठने में कितने

युग बीतेंगे। आप चलकर उनके वाम पाश्र्व में कुछ क्षण के लिए बैठ जाओ न। चलिए, कृपया तुरंत उठिए।''

'माँ पार्वती जी हंसती हुई तुरंत अपने ध्यानस्थ पतिदेव के वाम पाश्र्व में बैठ गईं।'

'श्री गणेश जी ने भूमि में लेटकर माता-पिता को साष्टांग प्रणाम किया, फिर उनकी सात बार प्रदक्षिणा की। माता-पिता की प्रदक्षिणा करके पुन: साष्टांग प्रणाम किया और माता कुछ पूछें, इसके पूर्व उनका मूषक गणेश जी को लेकर ब्रह्मलोक को चल दिया।'

'त्रिकाल दृष्टि वाले पितामह ब्रह्मा जी ने उनकी ओर देखा और सब कथा जान गए। अपने नेत्रों से उन्होंने श्री गणेश को सर्वश्रेष्ठ होने की स्वीकृति दे दी? बेचारे देवतागण अपने वाहनों को दौड़ाते पूरे वेग से ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा पूर्ण करके एक के बाद एक ब्रह्मलोक पहुंचे।'

'सब देवतागण एकत्र हो गए तो ब्रह्मा जी ने निर्णय सुनाया, श्रेष्ठता केवल शरीर बल को नहीं दी जा सकती है। गणेश जी अपने को अग्रेसर सिद्ध कर चुके हैं। देवताओं ने पूरी बात सुन ली और चुपचाप गणेश जी के सम्मुख सभी ने मस्तक झुका दिया।'

'देवगुरु बृहस्पति ने उसी समय कहा, 'सामान्य माता पिता का सेवक और उनमें श्रद्धा रखने वाला भी ब्रह्माण्ड प्रदक्षिणा करने वाले से श्रेष्ठ है। फिर श्री गणेश जी ने जिनकी प्रदक्षिणा की है, वे तो विश्वमूर्ति हैं, इसे कोई अस्वीकार कैसे करेगा?'

'और इस प्रकार बन गए श्री गणेश भगवान् जी सर्व प्रथम पूज्य देव। अब कोई भी पूजा हो, उनकी सर्व प्रथम पूजा करना आवश्यक है अथवा उस पूजा का फल नहीं मिलता। इसी कारण माँ लक्ष्मी की पूजा से पूर्व भी भगवान् श्री गणेश की पूजा की जाती है।'

'अब माँ लक्ष्मी के समुद्र मंथन से प्रगट होने की एवं उनके भगवान् विष्णु से पुनर्विवाह की कथा सुनो।'

समुद्र मंथन और माँ लक्ष्मी का प्राकट्य

दादा जी आगे बोले, 'पुत्र, पुत्रीओ, यह सत-युग के समय की घटना है। सम्राट महा बालि के पुत्र युवराज अग्र ने युद्ध कौशलता से दैत्य एवं दानवों का नेतृत्व करते हुए देवों से युद्ध किया। इस युद्ध में दैत्य एवं दानवों से अधिक देवताओं की क्षति हो रही थी। इंद्र विचलित हो गए। इस समस्या का समाधान हेतु वह ब्रह्मदेव के पास पहुंचे। ब्रह्मदेव ने उन्हें परामर्श दिया कि इस समस्या का समाधान केवल और केवल हरि विष्णु ही दे सकते हैं, अतः हम सब को उनके पास चलना चाहिए। सभी देवताओं ने इसका समर्थन किया। ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि सभी देवता तब हरि विष्णु के साकेत धाम पहुंचे। हरि विष्णु ने ब्रह्मदेव एवं उनके साथ आए सभी देवताओं का सम्मान किया और उनकी विनती सुनी। इस देव और दैत्यों के प्रतदिन होने वाले युद्ध से हरि विष्णु स्वयं भी अत्यंत दुःखित थे, लेकिन वह हस्तक्षेप नहीं करना चाहते थे। लेकिन अब यह दिन प्रतिदिन का संहार उनसे भी नहीं देखा जा रहा था। हरि विष्णु जानते थे कि सम्राट बालि के पश्चात दैत्य एवं दानव वंशों में से कोई भी त्रिदेवों एवं देवताओं का शुभेच्छु नहीं है। सम्राट बालि राजपाट से एक प्रकार से संन्यास ले चुके थे। सम्राट महा बालि के बड़े पुत्र युवराज बाण तप के लिए अवश्य चले गए थे, परन्तु वह तो हरि विष्णु के घोर विरोधी थे। युवराज अग्र को भी हरि विष्णु अथवा देवों से कोई सहानभूति नहीं थी। युवराज अग्र स्वर्ग लोक पर आक्रमण कर इंद्र को परास्त कर स्वर्ग लोक का सिंहासन जीतने की योजना बना रहे थे। अगर युवराज अग्र को इसमें सफलता मिल गई तो ब्रह्माण्ड में दैत्य एवं दानवों का राज्य हो जाएगा। यह दैत्य एवं दानव सम्राट बालि की भांति हरि विष्णु भक्त, न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ एवं वैदिक धर्म के उपासक नहीं हैं। युवराज अग्र की स्वर्ग विजय का अर्थ होगा, ब्रह्माण्ड में कुशासन। अतः इसके लिए भगवान् विष्णु को कुछ तो करना ही पड़ेगा। तभी उनके मस्तिष्क में एक विचार सूझा।

ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि देवताओं को सम्बोधित करते हुए हरि विष्णु बोले, 'ब्रह्मदेव एवं देवो, इसका निश्चित रूप से एक समाधान है। अगर हम देवताओं को अमृत पान कर अमरत्व दिला दें, तो वह अजेय हो जाएंगे। अमरत्व प्राप्त होने से वह मृत्यु को कभी भी प्राप्त नहीं होंगे। अमृत प्राप्त करने का एक ही साधन है, समुद्र-मंथन। समुद्र-मंथन अकेले देवताओं के सामर्थ्य में नहीं है। इसे देवताओं को दैत्य एवं दानवों के साथ मिलकर करना होगा। यह तभी संभव हैं जब हम दैत्य एवं दानवों को यह

आश्वासन दिला दें कि उन्हें अमृत का आधा भाग दे दिया जाएगा। अमरत्व प्राप्त करने के लालच में दैत्य और दानव, देवों के साथ समुद्र मंथन के लिए सहमत हो जाएंगे। दैत्य एवं दानवों की सहमति केवल सम्राट बालि के आदेश पर ही प्राप्त हो सकती है। सम्राट बालि इस समय राजपाट से विमुख अवश्य हैं, परन्तु अभी भी वह सम्राट हैं। उन्होंने युवराज अग्र का अभी राज्याभिषेक नहीं किया है। मैं ब्रह्मऋषि नारद को उनके पास समुद्र-मंथन का प्रस्ताव भेजता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सम्राट बालि इस प्रस्ताव पर सहमत हो जाएंगे और युवराज अग्र एवं अन्य दैत्य एवं दानव वंशों के सम्राटों को यथोचित आदेश देंगे। अभी आप सब अपने अपने लोक को वापस जाओ, और मुझे इस योजना पर कार्य करने दो।'

इंद्र तब कर-बद्ध हरि विष्णु से बोले, 'हे प्रभु, अगर अमृत का आधा भाग दैत्य एवं दानवों को मिल गया तब तो वह भी अमर एवं अजेय हो जाएंगे।'

हरि विष्णु तब मुस्कुराकर इंद्र से बोले, 'इंद्र, पहले अमृत पात्र प्राप्त करने की सोचो। आगे क्या होगा, कैसे होगा, यह मुझ पर छोड़ो।'

हरि विष्णु से इस प्रकार आश्वासन पा ब्रह्मदेव एवं इन्द्रादि देवता अपने अपने लोक को लौट गए। तब हरि विष्णु ने ब्रह्मऋषि नारद का स्मरण किया।

'प्रभु ने स्मरण किया है, मेरा सौभाग्य', इस प्रकार विचारते 'नारायण, नारायण' का जाप करते एवं वीणा बजाते तुरंत ब्रह्मऋषि नारद साकेत धाम पहुँच गए। प्रभु ने उनका हृदय से स्वागत किया और अपने समीप सिंहासन पर बैठाया। मृदुल वाणी में तब हरि विष्णु बोले, 'हे ब्रह्मऋषि, मेरा आपसे निवेदन है कि आप तुरंत सम्राट बालि की राजधानी सुतल पधारें और सम्राट से मिलकर मेरा एक निवेदन उन्हें प्रेषित करें। आजकल सम्राट बालि राज्य का भार अपने पुत्र युवराज अग्र को देकर अपने गुरुदेव आचार्य स्वर्भानु के आश्रम में रह रहे हैं।'

प्रभु के मुख से विनम्र शब्द सुन ब्रह्मऋषि नारद कर-बद्ध बोले, 'हे प्रभु, आपकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। आपकी इच्छा तो हमारे लिए आदेश है। आप आदेश दें, मुझे क्या करना है? आपकी सेवा में आपका इच्छित कार्य करने के लिए मैं पूर्णतः तत्पर हूँ।'

हरि विष्णु मुस्कराए और बोले, 'ब्रह्मऋषि, मेरा केवल एक सन्देश सम्राट बालि तक पहुंचाना है, एवं उस सन्देश का उत्तर लेकर मेरे पास आना है। बस, आपको इतना ही कार्य करना है।'

ब्रह्मऋषि नारद मुस्कुराकर बोले, 'प्रभु, कोई नई लीला रचने का विचार है? आप तुरंत आदेश दीजिए। मैं शीघ्र अति शीघ्र सुतल सन्देश ले जाने के लिए तत्पर हूँ।'

प्रभु बोले, 'ब्रह्मऋषि, सम्राट बालि को मेरा सन्देश देना कि मैं दिन प्रतिदिन दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य युद्ध से अति पीड़ित हूँ। प्रतिदिन सहस्त्रों की संख्या में दोनों ओर से ही सैनिक वीरगति को प्राप्त हो रहे हैं। मैं इस समस्या का स्थायी समाधान निकालने का प्रयास कर रहा हूँ। मेरा ऐसा मानना है कि अगर दैत्य, दानव एवं देवताओं को अमृत प्राप्ति हो जाए, तो वह सभी अमर हो जाएंगे। ऐसी परिस्थिति में उनकी असुरक्षता समाप्त हो जाएगी। उनके हृदय में धारणा हो जाएगी कि अमरत्व प्राप्त दैत्य, दानव अथवा देवताओं में से भी किसी को भी जीत पाना असंभव है। अतः वह जहां हैं, वहीं अपने अपने राज्य को प्रजा हित में सुचारू रूप से चलाने का प्रयास करेंगे। अमृत केवल समुद्र मंथन से ही प्राप्त हो सकता है। समुद्र मंथन अकेले करने का सामर्थ्य दैत्य, दानव अथवा देवताओं में से किसी में भी नहीं है। इसके लिए मिल जुल कर प्रयास करने होने। मैं देवताओं को दैत्य एवं दानवों के साथ मिलकर समुद्र मंथन के लिए तत्पर कर लूंगा। अगर सम्राट बालि दैत्य एवं दानव वंशों के सम्राटों को देवताओं के साथ मिलकर समुद्र मंथन का आदेश दे दें, तो यह कार्य बन सकता है। समुद्र मंथन से अमृत कलश प्राप्त होने पर अमृत को दैत्य, दानव एवं देवताओं में यथोचित बराबर भाग में बाँट दिया जाएगा।'

ब्रह्मऋषि नारद कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे। इससे पहले कि ब्रह्मऋषि कुछ शब्द बोलने के लिए अपना मुख खोलें, प्रभु ने संकेत से उन्हें अभी कुछ और पूछने से मना कर दिया।

प्रभु से आज्ञा ले तब ब्रह्मऋषि नारद सुतल को प्रस्थान कर गए।

'नारायण, नारायण' का जाप करते हुए ब्रह्मऋषि नारद आचार्य स्वर्भानु के आश्रम सुतल तुरंत पहुँच गए। 'नारायण, नारायण' उच्चारण का परिचित स्वर सुन आचार्य स्वर्भानु को तुरंत भान हो गया कि ब्रह्मऋषि नारद पधारें हैं। उस समय आचार्य स्वर्भानु

साधना में लीन थे तथा हरि विष्णु को ही स्मरण कर रहे थे। साधना को मध्य में ही छोड़ वह द्वार पर तुरंत ब्रह्मऋषि के स्वागत के लिए दौड़े और उनके चरणों में पड़ गए। प्रेम के अश्रुओं से ही उन्होंने ब्रह्मऋषि नारद के चरण धो डाले। तब ब्रह्मऋषि ने उठाकर उन्हें गले से लगा लिया और यथोचित आशीर्वाद दिया। इतने में ही सम्राट बालि को भी एक आश्रम वासी ने सूचित कर दिया कि ब्रह्मऋषि नारद आश्रम में पधारे हैं। सम्राट बालि भी तब आश्रम के द्वार की ओर नंगे पांव ही दौड़े। ब्रह्मऋषि को देखकर दूर से ही सम्राट बालि ने ब्रह्मऋषि को दंडवत प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तब ब्रह्मऋषि नारद को लेकर आचार्य स्वर्भानु सम्राट बालि के साथ अपनी कुटिया में आ गए। कर-बद्ध आचार्य स्वर्भानु ने तब ब्रह्मऋषि नारद से नदी में स्नान आदि कर निर्मल होने की प्रार्थना की ताकि यात्रा की थकावट दूर हो एवं साथ में जलपान करें। आचार्य का निवेदन सुन ब्रह्मऋषि नदी की ओर स्नान-ध्यान आदि करने चल पड़े।

थोड़ी ही देर में स्नान-ध्यान से निवृत हो, यात्रा की थकान दूर कर, ब्रह्मऋषि नारद आचार्य स्वर्भानु की कुटिया में वापस आ गए जहाँ आचार्य एवं सम्राट बालि, दोनों ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। साथ में जल पान किया। जलपान समाप्ति पर आचार्य स्वर्भानु ने ब्रह्मऋषि नारद को निवेदन किया कि वह विश्राम करें। ब्रह्मऋषि नारद मुस्कुराए और बोले, 'आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट बालि, मैं हरि विष्णु का एक सन्देश ले कर आपके पास पहुंचा हूँ। जब तक हरि का कार्य नहीं कर लेता, मुझे विश्राम में शान्ति कहाँ मिल सकती है?'

ब्रह्मऋषि नारद ने तब हरि विष्णु का सन्देश एवं प्रस्ताव कि दैत्य, दानव और देवता सभी मिल जुल कर समुद्र मंथन कर अमृत कलश की प्राप्ति करें एवं अमृत पान कर अमर हो जाएं, सुनाया। इससे दिन प्रतिदिन होने वाले दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य युद्ध को स्थायी रूप से समाप्त किया जा सकता है। आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट बालि दोनों ने ही इस प्रस्ताव को ध्यान से सुना। आचार्य स्वर्भानु ने तो तुरंत सहमति भी दे दी। लेकिन सम्राट बालि कुछ विचार में पड़ गए और बोले, 'ब्रह्मऋषि, हरि विष्णु का प्रस्ताव हमारे लिए आज्ञा है। मैं युवराज अग्र को तुरंत सन्देश भेजता हूँ कि वह तुरंत सभी दैत्य एवं दानवों के मान्यगण सम्राटों की शीघ्र अति शीघ्र एक सभा का आयोजन करें। मैं उन सभी की सहमति लेने का पूर्ण प्रयास करूंगा। आप जानते ही हैं कि अधिकतर दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण एवं सम्राट हरि विष्णु को अपना हितैषी नहीं समझते। अवश्य ही इसमें उनका हित निहित है, यह उनके मष्तिष्क में

डालने का मैं पूर्ण प्रयास करूंगा। हरि विष्णु के इस प्रस्ताव का उत्तर देने के लिए आपको इस सभा के आयोजन तक प्रतीक्षा करनी होगी। अगर दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण एवं सम्राटों ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो मैं स्वयं अकेला ही हरि विष्णु के इस प्रस्ताव पर कार्य करूंगा और देवताओं के साथ समुद्र मंथन करूंगा। मुझ में अभी भी इतना बल है कि मैं समुद्र मंथन में एक ओर से मथनी चला सकूं।'

आचार्य स्वर्भानु मधुर स्वर में तब बोले, 'हे सम्राट, दैत्य एवं दानव वंश के किस मान्यगण एवं आपके आधीन सम्राट में इतना साहस है कि वह आपके प्रस्ताव को अस्वीकार कर सके। अगर आप इस प्रस्ताव को दैत्य एवं दानवों के हित में समझते हैं तो अपनी सहमति सभी दैत्य एवं दानव वंशों के मान्यगण एवं सम्राटों को भेज दें। वह सब समुद्र मंथन की तैयारियां प्रारम्भ करें।'

सम्राट बालि तब बोले, 'आचार्य, आपका, ब्रह्मऋषि का एवं स्वयं हरि विष्णु का आदेश टालने का साहस किसी में भी नहीं। फिर भी यह उचित होगा कि शुभ कार्य सभी की सहमति से किया जाए। आप युवराज अग्र को मेरा सन्देश प्रेषित कर दीजिए।'

सम्राट बालि की आज्ञा आचार्य स्वर्भानु ने तुरंत युवराज अग्र को प्रेषित कर दी। युवराज अग्र ने सम्राट बालि की आज्ञा का तुरंत पालन किया। तुरंत ही एक सभा का आयोजन किया गया जिसमें दैत्य एवं दानव वंश के सभी मान्यगण एवं सम्राट उपस्थित थे।

सभा का नेतृत्व करते हुए सम्राट बालि बोले, 'प्रिय सभी दैत्य एवं दानव वंश के मान्यगण सम्राट, ब्रह्मऋषि नारद हरि विष्णु का एक प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुए हैं ताकि यह दिन प्रतिदिन का हमारे एवं देवताओं के मध्य युद्ध समाप्त किया जा सके। वह चाहते हैं कि हम देवताओं के साथ मिलकर समुद्र मंथन कर अमृत की प्राप्ति करें। अमृत मिलने पर वह सभी दैत्य, दानव एवं देवताओं के मध्य यथोचित बराबर भाग में बाँट देंगे। इससे सभी दैत्य, दानव एवं देवता अमरत्व प्राप्त करेंगे। इस से असुरक्षा की भावना समाप्त हो जाएगी एवं सभी अपने अपने राज्य में अपनी प्रजा के हित के लिए कार्य कर सकेंगे। इस प्रस्ताव का मैं पूर्ण रूप से समर्थन करता हूँ। अगर किसी को इस प्रस्ताव के विरुद्ध कुछ बोलना है तो वह अपने कथन को प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र है।'

सम्राट बालि की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि 'साधुवाद, साधुवाद' के नारों से सभा गूँज उठी। सभी एक स्वर में बोले, 'सम्राट बालि अगर आप स्वयं सहमत हैं, तो हम सभी सहमत हैं। सम्राट बालि आज्ञा दें कि अब हमें आगे क्या करना है?'

सभा में उपस्थित सभी दैत्य एवं दानव गणों की सहमति जान सम्राट बालि ने उन्हें अगले कदम की प्रतीक्षा करने का आदेश दिया। सभा विसर्जन हो गई। सभी के मुख पर अमरत्व प्राप्त करने की प्रसन्नता थी।

सम्राट बालि तब आचार्य स्वर्भानु के साथ उनके आश्रम वापस आ गए। उन्होंने सभी दैत्य एवं दानव वंशों के मान्यगण एवं सम्राटों की सहमति की सूचना ब्रह्मऋषि नारद को दे दी।

प्रस्ताव की स्वीकृति का समाचार ले तब ब्रह्मऋषि नारद साकेत धाम आ गए और प्रभु को सभी कथा कह सुनाई। सम्राट बालि के लोक तांत्रिक विचारों का अनुसरण करने से हरि विष्णु अत्यंत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे।

हरि विष्णु को अब दैत्य, दानव एवं देवता, सभी की समुद्र मंथन के लिए सहमति प्राप्त हो चुकी थी। समुद्र मंथन की प्रक्रिया की अब वह ब्रह्मऋषि नारद के साथ योजना बनाने लगे।

हरि विष्णु ब्रह्मऋषि नारद से बोले, 'ब्रह्मऋषि, तुम मंदराचल पर्वत जाओ और उन्हें सभी यह कथा सुनाओ जिस कारण दैत्य, दानव एवं देवता समुद्र मंथन के लिए एकत्रित होने वाले हैं। उनसे विनती करो कि वह मथनी बन कर इस यज्ञ को संपन्न करें। इसके पश्चात महादेव के निवास कैलास पर्वत पर जा कर उनसे विनती करो कि वह नागराज वासुकि को मंथन हेतु नेती बनने की आज्ञा दें। यह दोनों कार्य संपन्न कर देवताओं एवं युवराज अग्र को आदेश दो कि वह समुद्र में नाना प्रकार की औषधियों डाल दें जिससे मंथन में सहायता मिले।'

ब्रह्मऋषि नारद ने प्रभु की आज्ञा का तुरंत पालन किया। मंदराचल पर्वत मथनी के लिए तत्पर हो गए। महादेव की आज्ञा से नागराज वासुकि नेती बनने के लिए समुद्र मंथन के लिए निर्धारित स्थान पर पहुँच गए। समुद्र में ब्रह्माण्ड से दैत्य, दानवों एवं देवताओं ने विविध प्रकार की औषधियां लाकर डाल दीं। एक ओर दैत्य एवं दानव

वंश के वीर, और दूसरी ओर देवताओं का समूह समुद्र मंथन के लिए तत्पर हो गया। हरि विष्णु ने यथोचित मुहूर्त निकाला। निर्धारित मुहूर्त पर सभी दैत्य, दानव एवं देवता वंश के योद्धा निर्धारित स्थान पर समुद्र के किनारे पहुँच गए।

हरि विष्णु ने दो टोलियां बनाएं। पहली टोली दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं की थीं। इस टोली का नेतृत्व आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट बालि के परामर्श से युवराज अग्र को दे दिया गया। दूसरी टोली देवताओं की थी। इसका नेतृत्व देवराज इंद्र को दे दिया गया। हरि विष्णु ने कैलास पर्वत पर निवास कर रहे शुक्राचार्य को आमंत्रित किया तथा उन्हें देवताओं के गुरु वृहस्पति के साथ इस समुद्र मंथन का पर्यवेक्षक नियुक्त किया। आचार्य स्वर्भानु एवं सम्राट बालि को दोनों गुरुओं, शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति, की सेवा में लगा दिया।

हरि विष्णु ने दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं को नागराज वासुकि की पूँछ, एवं देवताओं को नागराज वासुकि के शीश को पकड़ समुद्र मंथन का आवाहन किया। दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं ने इस पर आपत्ति जताई। उन्हें ऐसी अनुभूति हुई कि देवताओं ने जान-बूझ कर उन्हें नीचा दिखाने के लिए हरि विष्णु के माध्यम से नागराज की पूँछ की ओर से मंथन करने का दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं को आदेश दिलवाया है। दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं का नेतृत्व करने वाले युवराज अग्र ने हरि विष्णु से स्पष्ट कर दिया कि अगर दैत्य एवं दानव वंश के योद्धाओं का सहयोग देवताओं को चाहिए तो वह नागराज वासुकि के शीश की ओर से ही मंथन करेंगे। प्रभु तो यह चाहते ही थे। वह तो एक मनोवैज्ञानिक खेल खेल रहे थे। वह देवताओं को पूँछ की ओर से मंथन कराना चाहते थे। लेकिन अगर ऐसा आदेश सर्वप्रथम दे देते तो संशयी दैत्य एवं दानव उन्हें ऐसा नहीं करने देते। अतः उन्होंने जान-बूझकर दैत्य एवं दानवों की मनोवैज्ञानिक प्रवृति को ध्यान में रखते हुए यह लीला रची। हरि विष्णु जानते थे कि मंथन के समय घर्षण उत्पन्न होने से नागराज वासुकि के मुख से अति विषैली अग्नि समान फुफकार निकलेगी जो उनके मुख की ओर मंथन करने वालों को झुलसाती हुई उन्हें विचलित एवं निस्तेज कर देगी।

हरि विष्णु ने तुरंत युवराज अग्र का प्रस्ताव मान लिया और देवताओं को आदेश दिया कि वह नागराज की पूँछ की ओर से मंथन करें जब कि दैत्य और दानव वंश के योद्धा नागराज वासुकि के मुख की ओर से मंथन करें।

समुद्र मंथन प्रारम्भ हुआ। घर्षण से उत्पन्न शक्ति के कारण मंदराचल पर्वत स्थिर नहीं हो पा रहे थे। उनका झुकाव कभी देवों की ओर होता तो कभी दैत्य एवं दानवों की ओर। हरि विष्णु को समझते देर नहीं लगी कि मथनी को स्थिर रखने के लिए एक आधार की आवश्यकता है। तब हरि विष्णु ने कछुए का रूप धारण किया और मंदराचल पर्वत का आधार बने। प्रभु का यह अवतार कूर्म-अवतार के नाम से विख्यात हुआ।

मंदराचल पर्वत रूपी मथनी के स्थिर होते ही अमृत पाने की इच्छा से दोनों टोलियां बड़े वेग से मंथन करने लगीं।

सहसा तभी समुद्र में से कालकूट नामक भयंकर विष निकला। उस विष की अग्नि से दसों दिशाएँ जलने लगीं। समस्त प्राणियों में हाहाकार मच गया। उस विष की ज्वाला से सभी देवता, दैत्य एवं दानव जलने लगे। उनकी कान्ति धूमल होने लगी। तब मंथन के पर्यवेक्षक शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने सभी दैत्य, दानव एवं देवताओं के साथ भगवान् शंकर की स्तुति की। उनकी स्तुति से प्रसन्न महादेव प्रगट हुए। सभी ने उनका दंडवत कर अभिवादन किया एवं इस कालकूट विष से मुक्ति का मार्ग पूछा। महादेव ने तब मुस्कुराकर उन सब को सम्बोधित करते हुए कहा, 'हे दैत्य, दानव और देवताओ, इस कालकूट विष से आपको घबराने की आवश्यक्ता नहीं। तुम्हारे एवं समस्त ब्रह्माण्ड के हित के लिए इसे मैं स्वयं धारण करूंगा। तब महादेव ने विकराल रूप धारण किया। कालकूट विष को अपनी हथेली पर रखा और उसे पी गए। महादेव ने अपनी योगशक्ति से इस विष को कण्ठ से नीचे नहीं उतरने दिया। उस कालकूट विष के प्रभाव से महादेव का कण्ठ नीला पड़ गया। तभी से महादेव नीलकण्ठ नाम से भी सम्बोधित किये जाने लगे। उनकी हथेली से कुछ विष पृथ्वी पर भी टपक गया, जिसे साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं ने ग्रहण कर उसका विषैलापन समाप्त कर दिया।

कालकूट विष के प्रभाव से मुक्त हो अब दोनों टोलियां फिर से समुद्र मंथन में उसी वेग से जुट गईं।

समुद्र मंथन में दूसरा रत्न देव कार्यों की सिद्धि के लिये साक्षात् सुरभि एवं कामधेनु गौ प्रकट हुईं। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंग की सैकड़ों गौएँ घेरे हुए थीं। महादेव ने तब शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति को निर्देश दिया कि सुरभि एवं कामदेव

गौ एवं उनके साथ समुद्र मंथन से प्रगट हुई सभी गौ माताओं को महर्षि वशिष्ठ को दान स्वरुप भेंट कर दिया जाए। वह जैसा चाहें इन गौ माताओं को अन्य ऋषिओं में वितरण कर दें। महादेव के आवाहन पर महर्षि वशिष्ठ तब उपस्थित हुए और उन्होंने सुरभि एवं कामधेनु गौ के साथ समस्त गौओं का दान सभी ऋषिओं की ओर से स्वीकार किया। उन्होंने कामधेनु गौ को अपने पास रख लिया। सुरभि गौ को महर्षि गौतम को सौंप दिया तथा अन्य गौओं का यथोचित अन्य ऋषिओं में वितरण कर दिया।

महादेव की आज्ञा से सुरभि, कामधेनु एवं अन्य गौ माताओं को महर्षि वशिष्ठ को सौंपने के पश्चात अब दोनों टोलियां फिर से आवेग से समुद्र मंथन करने लगीं।

तब समुद्र मंथन से तीसरा रत्न अश्वों के राजा उच्चैःश्रवा अश्व निकले। उच्चैःश्रवा अश्व का रंग श्वेत था। इनके सात मुख थे। यह तीव्र गति से चलने वाले एवं वायु में उड़ने वाले अश्व थे। इस अश्व को शुक्राचार्य ने सम्राट बालि को भेंट देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन सम्राट बालि ने गुरुदेव शुक्राचार्य के पग पड़ उनसे विनती की, 'हे मेरे आधार गुरुदेव, आप तो जानते हीं हैं कि मैंने तो राजसीय जीवन से संन्यास ले लिया है। मैं तो अपना शेष जीवन अब हरि विष्णु के चरणों में ही बिताना चाहता हूँ। मैं इस उच्चैःश्रवा अश्व का क्या करूंगा? आप गुरु वृहस्पति के साथ विचार विमर्श कर जैसा उचित समझें, इस अश्व को उसे दे दें।'

तब शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति में विचार विमर्श होने लगा। गुरु वृहस्पति ने इसे देवराज इंद्र को देने का परामर्श दिया, जो शुक्राचार्य ने स्वीकार कर लिया। अतः यह उच्चैःश्रवा अश्व तब इंद्र को भेंट स्वरुप दे दिया गया।

समुद्र मंथन का कार्य एक ओर से दैत्य एवं दानव, और दूसरी ओर से देवताओं द्वारा वेग से क्रमशः रहा। चतुर्थ रत्न के रूप में समुद्र से ऐरावत हाथी निकले। ऐरावत हाथी को पाते ही शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति में चर्चा होने लगी कि इसका अधिकारी कौन है? ऐरावत हाथी तो सदैव से ही इंद्र का वाहन रहा है। दुर्वासा ऋषि के एक श्राप के कारण ऐरावत हाथी को समुद्र में विलीन होना पड़ा था, अतः दोनों गुरुओं को यह निर्णय लेने में कोई दुविधा नहीं हुई कि इसे इसके स्वामी इंद्रदेव को सौंप दिया जाए।

समुद्र मंथन से पांचवां रत्न कौस्तुभ मणि निकली। कौस्तुभ मणि हरि विष्णु की प्रिय मणि है। हरि विष्णु इसे अपने वक्ष पर सदैव धारण करते थे, लेकिन वराह अवतार के समय हिरण्याक्ष से युद्ध करते हुए यह समुद्र में गिर गई थी। अतः शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने इसे आदर के साथ हरि विष्णु को सौंप दिया। यह मणि अत्यंत कांतिमान है। प्रभु इसी मणि द्वारा समस्त दैवीय आपदाओं का विनाश करते हैं।'

समुद्र मंथन से छठा रत्न कल्पद्रुम नाम का एक धर्म ग्रन्थ निकला। इसे शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने ब्रह्मदेव को सौंप दिया। कल्पद्रुम से ही कल्पवृक्ष की उत्पति हुई।

समुद्र मंथन में सप्तम रत्न के रूप में 'रम्भा' नाम की अप्सरा प्रगट हुईं। रम्भा इंद्रदेव के दरबार की एक अति सुन्दर अप्सरा थीं जिन्हें कुबेर-पुत्र नलकुबर के साथ प्रेम हो गया था। इन दोनों ने गांधर्व विवाह भी कर लिया था। यह सर्व विदित है कि जब इंद्र को भ्रम हो जाता है कि कोई ऋषि, महर्षि अथवा योगी उनका सिंहासन लेने के लिए घोर तप कर रहा है, तब वह अप्सराओं का उपयोग उनके तप को भंग करने में स्वभावतः करते रहे हैं। जब एक बार महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मदेव से ब्रह्मऋषि स्तर पाने के लिए घोर साधना में लीन थे, तब इंद्र ने पहले तो अप्सरा मेनका को उनका तप भंग करने हेतु भेजा। लेकिन अप्सरा मेनका तो स्वयं ही अपना हृदय महर्षि विश्वामित्र को दे बैठीं। इसके पश्चात इंद्र ने महर्षि विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए अप्सरा रम्भा को भेजा। महर्षि विश्वामित्र की दिव्यता के सम्मुख अप्सरा रम्भा की एक नहीं चली। अंत में थक कर वह उनके चरणों में गिर पड़ी और क्षमा याचना करने लगी। जब महर्षि विश्वामित्र को इसका आभास हुआ कि अप्सरा रम्भा इंद्र के निर्देशानुसार उनका तप भंग करने आई है, तो उन्हें अत्यंत क्रोध आया और उन्होंने उसे शिला बन जाने का श्राप दे दिया। अप्सरा रम्भा ने उनकी हृदय से स्तुति करते हुए क्षमा माँगी और अपने को निरपराधी बताया। वह तो अपने सम्राट इंद्रदेव के एक आदेश का ही पालन कर रही थी। तब महर्षि विश्वामित्र का हृदय पिघल गया और वह बोले, 'हे सुंदरी, मैं श्राप तो वापस नहीं ले सकता। तुम्हें शिला रूप में तो अवश्य ही परवर्तित होना पड़ेगा। तुम्हारे शिला में परवर्तित होने के पश्चात मैं तुम्हें समुद्र को अर्पित कर दूंगा। कुछ समय तक तुम समुद्र के आगोश में शिला बनकर पड़ी रहोगी। कुछ समय पश्चात हरि विष्णु के निर्देशानुसार दैत्य, दानव एवं देवताओं द्वारा समुद्र मंथन किया जाएगा। तब समुद्र देव तुम्हें तुम्हारे सत्य स्वरुप में प्रगट कर देंगे और तुम अपने इस सुन्दर तन को प्राप्त करोगी।'

इस प्रकार कहकर उन्होंने शिला में परवर्तित अप्सरा रम्भा को समुद्र देव को सौंप दिया। समुद्र मंथन में महर्षि विश्वामित्र के आशीर्वाद के अनुसार वह अपने सत्य स्वरुप में प्रगट हो गईं। शुक्राचार्य एवं गुरु वृहस्पति ने अप्सरा रम्भा को स्वतंत्र कर स्वर्ग लोक लौटने का आदेश दिया। उन दोनों महान आचार्यों को नमन कर तब अप्सरा रम्भा स्वर्ग लोक को चली गईं।

समुद्र-मंथन में अष्टम रत्न के रूप में माता 'श्री' माता 'लक्ष्मी' के रूप में प्रगट हुईं। लक्ष्मी तो श्री का ही रूप थीं। श्री हरि विष्णु की पत्नी थी हीं, अतः लक्ष्मी को हरि विष्णु ने वरण किया और उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार किया।

'श्री' का नया रूप 'लक्ष्मी', यह सुनकर सभी बच्चों को अत्यंत आश्चर्य हुआ। वह दादा जी से बोले, 'दादा जी, यह कथा विस्तार पूर्वक सुनाइए।'

दादा जी बोले, 'प्रिय पुत्र, पुत्रीओ, भगवान् विष्णु ने महर्षि भृगु जी की पुत्री 'श्री' से विवाह किया था। फिर इन विष्णु पत्नी 'श्री' को 'लक्ष्मी' रूप में अवतरित क्यों होना पड़ा, इस कथा को सुनिए।'

'महर्षि भृगु-पुत्री श्री से हरि विष्णु ने विवाह किया था। एक बार किसी विषय को लेकर श्री और हरि विष्णु में वाद-विवाद हो गया। वाद-विवाद इतना बढ़ गया कि श्री अपने पति हरि विष्णु से रुष्ट हो गईं। रुष्ट होकर वह अपने पिता महर्षि भृगु के आश्रम में पहुँची। महर्षि भृगु ने उन्हें समझाने के अत्यंत प्रयास किए, परन्तु उनका क्रोध शांत होता ही नहीं था। वह हरि विष्णु के साकेत धाम जाने को किसी भी प्रकार तैयार नहीं थीं। तब महर्षि भृगु ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में कहा, 'हे पुत्री, अगर तुम जमाता विष्णु के साथ मेरे आश्रम में सहर्ष आओ तो मैं सदैव हृदय से तुम्हारा स्वागत करूंगा। परन्तु अपने पति से एक वाद-विवाद पर इतना रुष्ट होना तुम्हें शोभा नहीं देता। पति-पत्नी में इस प्रकार के वाद-विवाद तो होते ही रहते हैं। अतः मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि तुम साकेत धाम लौट जाओ।'

पिताश्री महर्षि भृगु के इन कठोर शब्दों से श्री अत्यंत आहत हुईं। तब उन्होंने समुद्र में अपने आप को सौंप कर अपने प्राणों की आहुति देने का विचार बना लिया। समुद्र के आगोश में वह चली भी गईं। लेकिन समुद्र देव तो महर्षि भृगु को अपना भ्राता मानते हैं। भ्राता की पुत्री, अर्थात स्वयं की पुत्री समान। अतः उन्होंने श्री का अपनी पुत्री

स्वरुप में स्वागत किया और जब तक उनका क्रोध शांत नहीं हो जाता, तब तक उन्हें अपने आगोश में रहने को स्थान दिया। श्री का क्रोध तो शांत हो गया, लेकिन यह हठ बना रहा कि जब तक हरि विष्णु उन्हें मनाने नहीं आते, वह साकेत धाम नहीं जाएंगी। इधर हरि विष्णु भी श्री को मनाने नहीं गए। श्री इसे अपना अपमान ही समझती रहीं। यद्यपि वह अपनी हठ के कारण पति हरि विष्णु के साकेत धाम तो वापस नहीं गईं, लेकिन वह उन्हें हृदय से अत्यंत प्रेम करती थीं। उनका विरह भी उनसे सहन नहीं हो रहा था। अतः वह जड़मत हो गईं। समुद्र देव को अपनी पुत्री समान श्री की यह अवस्था देख अत्यंत दुःख हुआ और उन्होंने हरि विष्णु से उन्हें स्वीकार करने की प्रार्थना की। समुद्र देव की स्तुति से प्रसन्न तब हरि विष्णु ने उन्हें दर्शन दिए और उन्हें वचन दिया कि वह श्री को लक्ष्मी के रूप में शीघ्र ही स्वीकार करेंगे। उन्होंने समुद्र देव को आदेश दिया कि जब दैत्य, दानव एवं देवता समुद्र मंथन करेंगें, तब अष्टम रत्न के रूप में वह श्री को नए स्वरुप लक्ष्मी के रूप में प्रगट कर दें। वह उनका वरण कर तब उन्हें अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करेंगे। इस नए स्वरुप में उन्हें इस वाद-विवाद और रुष्ट होने की किसी घटना का कोई स्मरण नहीं रहेगा।'

हरि विष्णु के द्वारा समुद्र देव को वचन देने के कारण समुद्र मंथन में अष्टम रत्न के रूप में समुद्र देव स्वयं श्री को लक्ष्मी के रूप में लेकर प्रस्तुत हुए। लक्ष्मी को तुरंत हरि विष्णु ने वरण कर लिया। यह दिवस कार्तिक मास की अमावस्या था। उसी दिन से माता लक्ष्मी का पूजन प्रारम्भ हुआ जो बाद में दिवाली अथवा दीपावली नाम से मनाया जाने लगा।

भक्त प्रह्लाद का राज्याभिषेक

दादा जी ने पुनः बोलना प्राम्भ किया, 'अब तुम अन्य कथाएं सुनो जिस कारण दीपावली पर्व में भगवान् श्री गणेश एवं माँ लक्ष्मी पूजन के साथ अन्य नए उत्सव में भी जुड़ गए। भगवान् विष्णु ने युग युग में असत्य का विनाश करने के लिए कई अवतार लिए।'

'भगवान् ने स्वयं धरती पर कई अवतार लिए और असत्य का विनाश किया, वह कैसे दादा जी? भगवान् धरती पर अवतार क्यों लेते हैं, दादा जी?', मध्य पौत्री बोली।

बच्चों का पौराणिक कहानियां सुनने को उतावलापन देख दादा जी के दिल को बहुत प्रसन्नता हुई, और बोले, "अवश्य बेटा, थोड़ा धैर्य रखो। मैं तुम्हें विस्तार पूर्वक सब कहानियां सुनाऊँगा।'

हमारे महान संत गोस्वामी तुलसी दास जी ने बेटा श्री राम चरित मानस में इस को विस्तार पुर्वक समझाया है।

जब जब होइ धर्म की हानी । बाढहिं असुर अधम अभिमानी ।।
करहिं अनीति जाय नहीं बरनी । सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ।।
तब तब प्रभु धरी बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

जब जब धर्म का नाश होता है और नीच अभिमानी असुर बढ़ जाते हैं, और वो ऐसा अन्याय करते हैं जिसका वर्णन नहीं हो सकता, तथा गौ, देवता और पृथ्वी को कष्ट पहुंचाते हैं, तब तब कृपा निधान प्रभु भांति-भांति के दिव्य शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं।

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय और विजय जान सब कोऊ ।।
बिप्र श्राप तें दूनों भाई । तामस असुर देह तिन्ह पायी ।।

श्री हरि के जय और विजय दो प्यारे द्वारपाल हैं, जिनको सब कोई जानते हैं। उन दोनों भाईओं ने ब्राह्मण सनकादिक ऋषियों के श्रापवश तामसी शरीर पाया।

एक बार ब्रह्मा जी के मानसपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन एवं सनतकुमार भगवान् विष्णु के दर्शन हेतु बैकुण्ठधाम पहुँचे।

जब वे भगवान् विष्णु के निवास साकेत धाम पर पहुँचे तो जय और विजय नामक दो द्वारपालों ने उन्हें रोककर कहा कि इस समय भगवान् विष्णु विश्राम कर रहे हैं, अतः आप लोग अंदर नहीं जा सकते। यद्यपि वे चारों ऋषिगण अत्यधिक आयु के थे, किन्तु उनके तप के प्रभाव से वे बालक नजर आते थे, इसी कारण से जय और विजय उन्हें पहचान नहीं पाये थे और उन्हें साधारण बालक ही समझा था।

जय और विजय के द्वारा इस प्रकार से रोके जाने पर ऋषिगणों ने क्रोधित होकर कहा, "अरे मूर्खों, हम भगवान् विष्णु के भक्त हैं और भगवान् विष्णु तो अपने भक्तों के लिए सदैव उपलब्ध रहते हैं। तुम दोनों अपनी कुबुद्धि के कारण हम लोगों को भगवान् विष्णु के दर्शन से विमुख रखना चाहते हो। ऐसे कुबुद्धि वाले विष्णुलोक में रहने के योग्य नहीं है। अतः हम तुम्हें शाप देते हैं कि तुम दोनों का देवत्व समाप्त हो जाये और तुम दोनों भूलोक में जाकर पापमय योनियों में जन्म लेकर अपने पाप का फल भोगो।"

सनकादिक ऋषियों के इस घोर शाप को सुनकर जय और विजय भयभीत होकर उनसे क्षमा याचना करने लगे। इसी समय भगवान् विष्णु भी वहाँ पर आ गये। जय और विजय भगवान् विष्णु से प्रार्थना करने लगे कि वे ऋषियों से अपना शाप वापस ले लेने का अनुरोध करें।

भगवान् विष्णु ने उन दोनों से कहा, "ऋषियों का शाप कदापि व्यर्थ नहीं जा सकता। तुम दोनों को भूलोक में जाकर जन्म अवश्य लेना पड़ेगा। अपने अहंकार का फल भोग लेने के बाद तुम दोनों पुनः मेरे पास वापस साकेत धाम आओगे। तुम दोनों के पास यहाँ वापस आने के लिए दो विकल्प हैं। पहला, यह कि यदि तुम दोनों भूलोक में मेरे भक्त बन कर रहोगे तो सात जन्मों के बाद यहाँ वापस आओगे, और दूसरा, यह कि यदि भूलोक में जाकर मुझसे शत्रुता रखोगे तो तीन जन्मों के बाद तुम दोनों यहाँ वापस आओगे, क्योंकि उन तीनों जन्मों में मैं ही तुम्हारा संहार करूँगा।"

जय और विजय सात जन्मों तक पृथ्वीलोक में नहीं रहना चाहते थे इसलिए उन्होंने दूसरे विकल्प को मान लिया। उन्हीं जय और विजय भूलोक में सत युग में अपने पहले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु, त्रेता युग में अपने दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण, तथा द्वापर में अपने तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र बने ।

हिरण्याक्ष को भगवान् ने वराह (सूअर) का शरीर धारण करके मारा। हिरण्यकश्यपु को नरसिंह रूप धारण कर वध किया, और अपने भक्त प्रह्लाद का सुन्दर यश फैलाया।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु ने महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी दिति के पुत्र के रूप में पृथ्वी पर जन्म लिया। हिरण्याक्ष ने ब्रह्मा जी को प्रसन्न करने के लिए बहुत बड़ा तप किया। उनके तप से ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रकट होकर कहा, 'तुम्हारे तप से मैं प्रसन्न हूं। वर मांगो, क्या चाहते हो?'

हिरण्याक्ष ने उत्तर दिया, 'प्रभो, हमें ऐसा वर दीजिए, जिससे न तो कोई युद्ध में हमें पराजित कर सके और न कोई मार सके। '

ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर अपने लोक में चले गए ।

ब्रह्मा जी से अजेयता और अमरता का वरदान पाकर हिरण्याक्ष उद्दंड और स्वेच्छाचारी बन गया। वह तीनों लोकों में अपने को सर्वश्रेष्ठ मानने लगा। दूसरों की तो बात ही क्या, वह स्वयं विष्णु भगवान् को भी अपने समक्ष तुच्छ मानने लगा। हिरण्याक्ष ने गर्वित होकर तीनों लोकों को जीतने का विचार किया। वह हाथ में गदा लेकर इन्द्रलोक में जा पहुंचा। देवताओं को जब उसके पहुंचने का समाचार मिला, तो वे भयभीत होकर इन्द्रलोक से भाग गए। देखते ही देखते समस्त इन्द्रलोक पर हिरण्याक्ष का अधिकार स्थापित हो गया। जब इन्द्रलोक में युद्ध करने के लिए कोई नहीं मिला, तो हिरण्याक्ष वरुण की राजधानी विभावरी नगरी में जा पहुंचा।

हिरण्याक्ष ने वरुण के समक्ष उपस्थित होकर कहा, 'वरुण देव, आपने दैत्यों को पराजित करके राजसूय यज्ञ किया था। आज आपको मुझे पराजित करना पड़ेगा। कमर कस कर तैयार हो जाइए, मेरी युद्ध पिपासा को शांत कीजिए।

हिरण्याक्ष का कथन सुनकर वरुण के मन में रोष तो उत्पन्न हुआ, किंतु उन्होंने भीतर ही भीतर उसे दबा दिया। वे बड़े शांत भाव से बोले, 'तुम महान योद्धा और शूरवीर हो। तुमसे युद्ध करने के लिए मेरे पास शौर्य कहां? तीनों लोकों में भगवान् विष्णु को छोड़कर कोई भी ऐसा नहीं है, जो तुमसे युद्ध कर सके। अतः उन्हीं के पास जाओ। वे ही तुम्हारी युद्ध पिपासा शांत करेंगे।'

वरुण का कथन सुनकर हिरण्याक्ष भगवान् विष्णु की खोज में समुद्र के नीचे रसातल में जा पहुंचा। रसातल में पहुंचकर उसने एक विस्मयजनक दृश्य देखा। उसने देखा, एक वराह अपने दांतों से धरती को उठाए हुए चला जा रहा है। वह मन ही मन सोचने लगा, यह वराह कौन है? कोई भी साधारण वराह धरती को अपने दांतों से नहीं उठा सकता। अवश्य यह वराह के रूप में भगवान् विष्णु ही हैं, क्योंकि वे ही देवताओं के कल्याण के लिए माया का नाटक करते रहते हैं।

हिरण्याक्ष वराह को लक्ष्य करके बोल उठा, 'तुम अवश्य ही भगवान् विष्णु हो। धरती को रसातल से कहां लिए जा रहे हो? यह धरती तो दैत्यों के उपभोग की वस्तु है। इसे रख दो। तुम अनेक बार देवताओं के कल्याण के लिए दैत्यों को छल चुके हो। आज तुम मुझे छल नहीं सकोगे। आज मैं पुराने बैर का बदला तुमसे चुका कर रहूंगा।'

यद्यपि हिरण्याक्ष ने अपनी कटु वाणी से गहरी चोट की थी, किंतु फिर भी भगवान् विष्णु शांत ही रहे। उनके मन में रंचमात्र भी क्रोध पैदा नहीं हुआ। वे वराह के रूप में अपने दांतों से धरती को लिए हुए आगे बढ़ते रहे। हिरण्याक्ष भगवान् वराह रूपी विष्णु के पीछे लग गया। वह कभी उन्हें निर्लज्ज कहता, कभी कायर कहता और कभी मायावी कहता, पर भगवान् विष्णु केवल मुस्कराकर रह जाते। उन्होंने रसातल से बाहर निकलकर धरती को समुद्र के ऊपर स्थापित कर दिया। हिरण्याक्ष उनके पीछे लगा हुआ था। अपने वचन-बाणों से उनके हृदय को बेध रहा था। भगवान् विष्णु ने धरती को स्थापित करने के पश्चात हिरण्याक्ष की ओर ध्यान दिया।

उन्होंने हिरण्याक्ष की ओर देखते हुए कहा, 'तुम तो बड़े बलवान हो। बलवान लोग कहते नहीं हैं, करके दिखाते हैं। तुम तो केवल प्रलाप कर रहे हो। मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं। तुम क्यों नहीं मुझ पर आक्रमण करते? बढ़ो आगे, मुझ पर आक्रमण करो।'

हिरण्याक्ष की रगों में बिजली दौड़ गई। वह हाथ में गदा लेकर भगवान् विष्णु पर टूट पड़ा। भगवान् के हाथों में कोई अस्त्र शस्त्र नहीं था। उन्होंने दूसरे ही क्षण हिरण्याक्ष के हाथ से गदा छीनकर दूर फेंक दी। हिरण्याक्ष क्रोध से उन्मत्त हो उठा। वह हाथ में त्रिशूल लेकर भगवान् विष्णु की ओर झपटा।

भगवान् ने शीघ्र ही सुदर्शन चक्र का आह्वान किया। चक्र उनके हाथों में आ गया। उन्होंने अपने चक्र से हिरण्याक्ष के त्रिशूल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। हिरण्याक्ष

अपनी माया का प्रयोग करने लगा। वह कभी प्रकट होता, तो कभी छिप जाता, कभी अट्टहास करता, तो कभी डरावने शब्दों में रोने लगता, कभी रक्त की वर्षा करता, तो कभी हड्डियों की वर्षा करता। भगवान् विष्णु उसके सभी माया कृत्यों को नष्ट करते जा रहे थे। जब भगवान् विष्णु हिरण्याक्ष को बहुत नचा चुके, तो उन्होंने उसकी कनपटी पर कस कर एक चपत जमाई। उस चपत से उसकी आंखें निकल आईं। वह धरती पर गिरकर निश्चेष्ट हो गया। इस प्रकार एक जन्म में भगवान् विष्णु ने इस असुर का वध किया।

हिरण्याक्ष के भगवान् विष्णु द्वारा वध करने से हिरण्यकश्यपु को बड़ा क्रोध आया। उसने भगवान् विष्णु से बदला लेने की ठानी।

हिरण्यकश्यपु ने भी कठिन तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त कर लिया कि न वह किसी मनुष्य द्वारा मारा जा सकेगा, न पशु द्वारा, न दिन में मारा जा सकेगा न रात में, न घर के अंदर न बाहर, न किसी अस्त्र के प्रहार से और न किसी शस्त्र के प्रहार से। उसको प्राणों को कोई डर न रहा। इस वरदान ने उसे अहंकारी बना दिया और वह अपने को अमर समझने लगा। उसने इंद्र का राज्य छीन लिया और तीनों लोकों को प्रताड़ित करने लगा। वह चाहता था कि सब लोग उसे ही भगवान् मानें और उसकी पूजा करें। उसने अपने राज्य में भगवान् विष्णु की पूजा को वर्जित कर दिया। हिरण्यकश्यपु का पुत्र प्रह्लाद, भगवान् विष्णु का उपासक था, और यातना एवं प्रताड़ना के पश्चात भी वह भगवान् विष्णु की पूजा करता रहा। हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को मारने के अनगिनत उपाय किए, परन्तु हर बार भगवान् विष्णु उसकी रक्षा करते रहे। अंतिम प्रयास में हिरण्यकश्यपु ने लोहे के एक खंभे को गर्म कर लाल कर दिया तथा प्रह्लाद को उसे गले लगाने को कहा। एक बार फिर भगवान् विष्णु प्रह्लाद को उबारने आए। वे खंभे से नरसिंह के रूप में प्रकट हुए, तथा हिरण्यकश्यपु को महल के प्रवेश द्वार की चौखट पर, जो न घर का बाहर था न भीतर, गोधूलि बेला में, जब न दिन था न रात, आधा मनुष्य आधा पशु, जो न नर था न पशु, ऐसे नरसिंह के रूप में अपने लंबे प्रखर नाखूनों से, जो न अस्त्र थे न शस्त्र, मार डाला। इस प्रकार हिरण्यकश्यपु अनेक वरदानों के पश्चात भी अपने दुष्कर्मों के कारण भयानक अंत को प्राप्त हुआ।

हिरण्यकश्यपु की मृत्यु के बाद स्वयं ब्रह्मदेव ने महाराज प्रह्लाद का राज्याभिषेक कराया। चक्रवर्ती सम्राट प्रह्लाद भगवान् विष्णु के प्रिय एक आदर्श सम्राट हुए जिनके राज्य में धर्म को सम्मान मिला।

सम्राट प्रह्लाद का राज्याभिषेक इसी कार्तिक मास की अमावस्या को हुआ था, जो दीपावली दिवस है। उनके राज्याभिषेक की प्रसन्नता में दीपावली पर्व मनाया जाता है। सत्य की असत्य पर विजय की प्रसन्नता में दीपावली पर्व मनाने का यह एक कारण है।

कल दूसरी कथा, भगवान् राम द्वारा रावण को मारकर सत्य पर असत्य के जीत की दूसरी कथा सुनाएंगे।

श्री राम का राज्याभिषेक

दूसरे दिन बच्चे सुबह जल्दी उठ गए। आज उनको कुछ कहना नहीं पड़ा। सुबह उठते ही स्नान कर नए कपडे पहने। पूजा गृह जाकर भगवान् एवं माँ के चित्र के समक्ष नतमस्तक हुए। पूरा दिन प्रसन्नता के साथ बिताया। सायं को भगवान् गणेश जी एवं माँ लक्ष्मी जी की स्तुति की। नए बही खाते खोलने में माता पिता की मदद की, और फिर फुलझड़ियां छुड़ायीं। रात्रि समय होते ही फिर वह दादा जी के पास आ गए और, 'दादा जी अब दूसरी कहानी सुनाओ न', कहकर दादा जी से चिपट गए ।

दादा जी ने दूसरी कथा प्रारम्भ की। बच्चे बड़े ध्यानमग्न कथा सुनाने लगे।

दादा जी आगे बोले, 'प्रिय बच्चो, यही जय और विजय भूलोक में त्रेता युग में अपने दूसरे जन्म में रावण और कुम्भकर्ण बने। रावण लंका देश के सम्राट बने। उनके छोटे भाई कुम्भकरण उनके प्रधान सेनापति थे। इनका वध करने के लिए भगवान् विष्णु ने नर शरीर धारण कर श्री राम अवतार लिया।

अपने जय और विजय को दिए वचनानुसार उनका स्वयं अपने हाथों से वध करने के लिए उन्होंने लीला रची। १४ वर्ष का पिता द्वारा वनवास स्वीकार किया। उनके वनवास समय के अंतर्गत लंकापति रावण ने उनकी प्रतिबिंबित पत्नी सीता का हरण कर लिया। तब सम्राट सुग्रीव एवं भगवान् हनुमान की सहायता से उन्होंने रावण, उसके भाई कुम्भकरण को मोक्ष दिया। विभीषण, जो रावण के सब से छोटे भ्राता थे तथा भगवान् श्री राम के भक्त थे, को लंका का राज्याभिषेक किया। अपने अवतार कार्य को पूर्ण कर अयोध्या, अपनी राजधानी वापस लौटने का तब उन्होंने विचार किया। इसी समय १४ वर्ष वनवास की अवधि भी कुछ ही दिनों में समाप्त होने वाले थी।

श्री राम लंकाधिपति रावण एवं उसके समस्त परिवार को मोक्ष प्रदान कर, प्रतिबिंबित सीता को अग्नि को सौंप एवं प्राकृत सीता से साक्षात्कार होने पर अपने सखाओं के साथ अवध जाने की तैयारी में लग गए। उन्हें प्रति क्षण अपने छोटे भ्राता भरत की चिन्ता सता रही थी। अगर १४ वर्ष वनवास की अवधि पूर्ण होने पर समय पर वह अयोध्या नहीं लौटे तो कहीं भरत अपना जीवन ही न त्याग दें। श्री राम की मनोस्थिति देख लंकापति श्री विभीषण ने तुरंत पुष्पक विमान का आवाहन किया। पुष्पक विमान

के आने पर सर्व प्रथम सीता जी ने प्रवेश किया। अभी उन्होंने पुष्पक विमान में कदम रखा ही था कि हृदय में अपराध बोध की अनुभूति होने लगी।

सीता जी सोचने लगीं, 'कैसा अपराध बोध? श्री राम एवं उनकी सेना ने तो रावण को परिवार सहित एवं सभी उसके अनुयायी अत्याचारी राक्षसों को निर्वाण दिया है। इस से तो जग में धर्म की रक्षा हुई है।'

तभी उनके अंतर्मन से एक स्वर उठा, 'हे सीते, तेरे पति श्री राम ने रावण का वध कर एक ब्रह्म-हत्या का पाप अपने सर पर ले लिया है। इस पाप का प्रायश्चित किए बिना लंका से प्रस्थान करने पर अशुभ ही अशुभ होगा।'

सीता तुरंत पुष्पक विमान से बाहर निकलीं, और पति श्री राम को इस अपराध बोध की भावना से अवगत कराया।

'अवश्य ही ऋषि पुत्र रावण की हत्या एक ब्रह्म-हत्या है। इसका प्रायश्चित आवश्यक है प्रिये। इस तथ्य की ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने के लिए मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ,' बोले श्री राम।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ।।

तब श्री राम ने तुरंत श्री हनुमान जी को बुलाया और उन्हें महर्षि भारद्वाज के प्रयाग आश्रम जाने का आदेश दिया। महर्षि भारद्वाज ही इस ब्रह्म-हत्या से मुक्ति का मार्ग सुझा सकते हैं।

श्री राम के आदेश का तुरंत पालन करते हुए पवन गति से श्री हनुमान जी महर्षि भारद्वाज जी के आश्रम प्रयाग पहुंचे और उन्हें सभी समाचारों से अवगत कराया।

श्री हनुमान जी के मधुर वचन सुन महर्षि ने उन्हें अपने गले से लगाया और बोले, 'हे पवनपुत्र, श्री राम तो स्वयं भगवान् विष्णु के अवतार और सर्व ज्ञानी हैं। मैं उन्हें ब्रह्म-

हत्या से मुक्ति का मार्ग बताऊँ, अवश्य ही यह छोटे मुँह बड़ी बात होगी। मैं उनका भक्तों के प्रति आदर समझते हुए जो मान उन्होंने मुझे दिया, उसके लिए नतमस्तक हूँ। सर्व विदित है कि ब्रह्म-हत्या के पाप से मुक्ति देवों के देव महादेव ही दे सकते हैं। अतः मेरा ऐसा विचार है कि महादेव के मंदिर की स्थापना कर उनकी स्तुति की जाए। महादेव स्वयं प्रगट हो सब पापों से मुक्त कर देंगे।'

महर्षि भारद्वाज के विचार सुन, उनसे आज्ञा ले, श्री हनुमान जी ने तुरंत लंका को प्रस्थान किया और वहां पहुँच श्री राम को महर्षि द्वारा बताई हुई ब्रह्म-हत्या से मुक्ति की विधि से अवगत कराया।

श्री राम ने तब वहां महादेव मंदिर की स्थापना की जो आज भी लंका में अशोक वाटिका के समीप स्थित है। विधिवत महादेव का पूजन किया।

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम ।१।
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ।२।
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ।३।
शिवाकान्त शंभो शशाङ्कार्धमौले महेशान शूलिञ्जटाजूटधारिन् ।
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूपः प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ।४।
परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ।५।
न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा ।
न गृष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीड ।६।
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम ।७।
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम् नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम् ।८।

प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शंभो महेश त्रिनेत् ।
शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्य: ।९।
शंभो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपतेपशुपाशनाशिन् ।
काशीपतेकरुणयाजगदेतदेकस्त्वंहंसि पासिविदधासिमहेश्वरोऽसि ।१०।
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिङ्गात्मके हर चराचरविश्वरूपिन ।११।

देवों के देव महादेव उनकी अर्चना से प्रसन्न हो तब प्रगट हुए एवं ब्रह्म-हत्या से उन्हें मुक्ति दी।

प्रसन्न चित्त श्री राम तब अपनी धर्म-पत्नी सीता एवं सभी सखाओं के साथ पुष्पक विमान में सवार हुए, और अयोध्या की ओर चल दिए। मार्ग में श्री राम ने सीता को वह सभी पवित्र स्थल दिखाए जहां जहां से वह उनकी खोज करते हुए पारगमन हुए थे।

श्री रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसी दास जी ने इसका चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

कह रघुबीर देखु रन सीता । लछिमन इहाँ हत्यो इँद्रजीता ॥
हनूमान अंगद के मारे । रन महि परे निसाचर भारे ॥

श्री रघुवीर जी ने कहा, 'हे सीते, रणभूमि देखो। लक्ष्मण ने यहाँ इंद्र को जीतने वाले मेघनाद को मारा था। हनुमान् और अंगद के मारे हुए ये भारी भारी निशाचर रणभूमि में पड़े हैं।'

कुंभकरन रावन द्वौ भाई । इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई ॥

'देवताओं और मुनियों को दुःख देने वाले कुंभकर्ण और रावण दोनों भाई यहाँ मारे गए।'

इहाँ सेतु बाँध्यों अरु थापेउँ सिव सुख धाम ।
सीता सहित कृपानिधि संभुहि कीन्ह प्रनाम ॥

'मैंने यहाँ पुल बाँधा (बँधवाया) और सुखधाम श्री शिवजी की स्थापना की।' तदनन्तर कृपानिधान श्री राम जी ने सीता जी सहित श्री रामेश्वर महादेव को प्रणाम किया।

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम ।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ॥

वन में जहाँ तहाँ करुणा सागर श्री रामचंद्रजी ने निवास और विश्राम किया था, वे सब स्थान प्रभु ने जानकी जी को दिखलाए और सबके नाम बतलाए।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा । दंडक बन जहँ परम सुहावा ॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना । गए रामु सब कें अस्थाना ॥

विमान शीघ्र ही वहाँ चला आया, जहाँ परम सुंदर दण्डकवन था और जहां अगस्त्य आदि बहुत से मुनिराज रहते थे। श्री रामजी इन सबके स्थानों में गए।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा । चित्रकूट आए जगदीसा ॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा । चला बिमानु तहाँ ते चोखा ॥

संपूर्ण ऋषियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश्वर श्री राम जी चित्रकूट आए। वहाँ मुनियों को संतुष्ट किया। (फिर) विमान वहाँ से आगे तेजी के साथ चला।

बहुरि राम जानकिहि देखाई । जमुना कलि मल हरनि सुहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता । राम कहा प्रनाम करु सीता ॥

फिर श्री राम जी ने जानकी जी को कलियुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुना जी के दर्शन कराए। फिर पवित्र गंगा जी के दर्शन किए। श्री रामजी ने कहा, 'हे सीते, इन्हें प्रणाम करो।'

तीरथपति पुनि देखु प्रयागा । निरखत जन्म कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी । हरनि सोक हरि लोक निसेनी ॥
पुनि देखु अवधपुरि अति पावनि । त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि ॥

'तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिसके दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं। परम पवित्र त्रिवेणीजी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और श्री हरि के परम धाम (पहुँचने) के लिए सीढ़ी के समान है। अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो, जो तीनों प्रकार के तापों और भव (आवागमन रूपी) रोग का नाश करने वाली है।'

सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥

इस प्रकार कहकर कृपालु श्री राम जी ने सीता जी सहित अवधपुरी को प्रणाम किया। सजल नेत्र और पुलकित शरीर होकर श्री राम जी बार बार हर्षित हो रहे हैं।

पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह ।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्ह ॥

फिर त्रिवेणी में आकर प्रभु ने हर्षित होकर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए।

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई । धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु । समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥

तदनन्तर प्रभु ने हनुमान् जी को समझाकर कहा, 'हे हनुमान, तुम ब्रह्मचारी का रूप धर अवधपुरी को जाओ। भरत को हमारी कुशल सुनाना और उनका समाचार लेकर चले आना।'

तुरत पवनसुत गवनत भयऊ । तब प्रभु भरद्वाज पहिं गयऊ ॥
नाना बिधि मुनि पूजा कीन्ही । अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही ॥

पवनपुत्र हनुमान्‌जी तुरंत ही चल दिए। तब प्रभु भरद्वाज जी के पास गए। मुनि ने (इष्ट बुद्धि से) उनकी अनेकों प्रकार से पूजा की और स्तुति की और फिर (लीला की दृष्टि से) आशीर्वाद दिया।

मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी । चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी ॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु आए । नाव नाव कहँ लोग बोलाए ॥

दोनों हाथ जोड़कर तथा मुनि के चरणों की वंदना करके प्रभु विमान पर चढ़कर फिर चले। यहाँ जब निषादराज ने सुना कि प्रभु आ गए, तब उसने 'नाव कहाँ है? नाव कहाँ है?' पुकारते हुए लोगों को बुलाया।

सुरसरि नाघि जान तब आयो । उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो ॥
तब सीताँ पूजी सुरसरी । बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी ॥

इतने में ही विमान गंगाजी को लाँघकर दूसरे पार आ गया, और प्रभु की आज्ञा पाकर वह किनारे पर उतरा। तब सीताजी ने बहुत प्रकार से गंगा जी की पूजा की। वह उनके चरणों पर गिरीं।

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा । सुंदरि तव अहिवात अभंगा ॥
सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल । आयउ निकट परम सुख संकुल ॥

गंगा जी ने मन में हर्षित होकर आशीर्वाद दिया, 'हे सुंदरी, तुम्हारा सुहाग अखंड हो।' भगवान् के तट पर उतरने की बात सुनते ही निषादराज गुह प्रेम में विह्वल होकर दौड़ा। परम सुख से परिपूर्ण होकर वह प्रभु के समीप आया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही । परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही ॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई । हरषि उठाइ लियो उर लाई ॥

श्री जानकी जी सहित प्रभु को देखकर वह आनंद-समाधि में मग्न होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसे शरीर की सुधि न रही। श्री रघुनाथ जी ने उसका परम प्रेम देखकर उसे उठाकर हर्ष के साथ हृदय से लगा लिया।

उसी समय प्रभु ने एक विशेष समुदाय के लोगों का समूह देखा जिनका मुखिया करबद्ध प्रभु की ओर टकटकी लगाए नैनों से अश्रु बहा रहा था। प्रभु ने उसे तुरंत पहचान लिया। यह तो अवध के हिज़ड़ा समुदाय के मुखिया श्री लक्ष्मी नारायण दासी थे। प्रभु श्री राम तुरंत उनके पास दौड़ते हुए गए। श्री लक्ष्मी नारायण दासी जी प्रभु के चरण पर गिर पड़े और अपने अश्रुओं से उन्होंने प्रभु के धूल भरे चरणों को धो दिया।

तब प्रभु ने उन्हें उठाकर अपने गले से लगाया और प्रेम भरे वचन बोले, 'हे काकी, आपको तो अवध में होना था। हमारे स्वागत के लिए इतना दूर आने की आवश्यकता क्या थी? थोड़ी ही देर में तो हम स्वयं ही अवध पहुंचने वाले हैं।'

तब अश्रु भरे नैनों से सुश्री लक्ष्मी नारायण दासी जी बोलीं, 'हे प्रभु, हम तो चौदह वर्ष से अवध गए ही नहीं। भरत मिलाप के पश्चात जब आप वन को चले गए तब से ही हम यहीं आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

प्रभु ने विस्मय होकर कहा, 'काकी, मैंने तो आप सब से अवध लौटने की प्रार्थना की थी, फिर आप और आपका समुदाय क्यों नहीं चला गया?'

'हे प्रभु, आपने समस्त नर नारीओं को सम्बोधित करते हुए उन्हें अवध लौटने की आज्ञा दी थी। हम हिजड़ों के लिए तो कोई आदेश नहीं था। अतः प्रभु की इच्छा जान, हम अवध न जाकर यहीं आपकी प्रतीक्षा करते रहे। अब आप आज्ञा दें तो हम अवध को प्रस्थान करें,' बोलीं सुश्री लक्ष्मी नारायण दासी जी।

इस समुदाय का त्याग देख प्रभु के नेत्र जल से भर गए। एक बार फिर उन्होंने सुश्री लक्ष्मी नारायण दासी जी को हृदय से लगाया और कर उठा सभी समाज को सम्बोधित किया, 'हिजड़ा समुदाय मुझे भाई भरत से भी अधिक प्रिय है। किसी भी मंगल कार्य

में सर्व प्रथम इनकी आराधना कर जो भी कार्य किया जाएगा, मैं उसको पूर्णतः सफल बनाऊंगा, ऐसा मेरा शुभाशीष है।'

उसी समय से हर मंगल कार्य, चाहे वह पुत्र-पुत्री जन्म हो, विवाह हो, गृह प्रवेश हो अथवा कोई भी सुमंगल कार्य हो, हिजड़ा समाज का आदर करने के पश्चात ही वह शुभ कार्य किया जाता है।

प्रभु श्री राम ने तद्पश्चात सभी हिजड़ा समुदाय को अयोध्या वापस जाने का आदेश दिया, और सुश्री लक्ष्मी नारायण दासी को अपने साथ ले लिया।

हनुमान जी शीघ्र ही भरत जी से अवध में मिलकर एवं उनको श्री रघुनाथ जी के अवध वापस लौटने का समाचार सुना वापस गंगा तट आ गए जहाँ कृपानिधान श्री राम अपने सभी सखाओं के साथ विश्राम कर रहे थे। हनुमान जी के मुख से सब समाचार सुन प्रभु ने समस्त सखाओं के साथ तुरंत पुष्पक विमान अयोध्या की ओर ले चलने का आदेश दिया।

शीघ्र ही प्रभु समस्त सखाओं के साथ अयोध्या पहुँच गए। अयोध्या पहुँच प्रभु श्री राम ने पुष्पक विमान को पृथ्वी पर उतारा।

कृपा सागर भगवान् श्री रामचंद्रजी ने सब लोगों को आते देखा, तो प्रभु ने विमान को नगर के समीप उतरने की प्रेरणा की। तब वह पृथ्वी पर उतरा।

उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरहु अति ताहु ॥

विमान से उतरकर प्रभु ने पुष्पक विमान से कहा कि तुम अब कुबेर के पास जाओ। श्री रामचंद्र जी की प्रेरणा से वह चला, उसे अपने स्वामी कुबेर के पास जाने का हर्ष है, और प्रभु श्री रामचंद्र जी से अलग होने का अत्यंत दुःख भी।

आए भरत संग सब लोगा । कृस तन श्री रघुबीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥

भरतजी के साथ सब लोग आए। श्री रघुवीर के वियोग से सबके शरीर दुबले हो रहे हैं। प्रभु ने वामदेव, वशिष्ठ आदि मुनिश्रेष्ठों को देखा, तो उन्होंने धनुष-बाण पृथ्वी पर रखकर,

धाइ धरे गुर चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरें कुसल तुम्हारिहिं दाया ॥

छोटे भाई लक्ष्मण जी सहित दौड़कर गुरु जी के चरणकमल पकड़ लिए कुबेर उनके रोम रोम अत्यंत पुलकित हो रहे थे । मुनिराज वशिष्ठ जी ने उठाकर उन्हें गले लगाकर कुशल पूछी। प्रभु ने कहा, 'हे गुरुवर, आप ही की दया में हमारी कुशल है।'

सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा । धर्म धुरंधर रघुकुलनाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज । नमत जिन्हहि सुर मुनि संकर अज ॥

धर्म की धुरी धारण करने वाले रघुकुल के स्वामी श्री राम जी ने सब ब्राह्मणों से मिलकर उन्हें मस्तक नवाया। फिर भरत जी ने प्रभु के वे चरणकमल पकड़े जिन्हें देवता, मुनि, शंकरजी और ब्रह्माजी (भी) नमस्कार करते हैं। अपने दोनों ही भ्राता भरत एवं शत्रुघ्न से श्री राम, सीता जी एवं लक्ष्मण जी बड़े प्रेम से मिले।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी । जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥

प्रभु को देखकर अयोध्यावासी सब हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न सब दुःख नष्ट हो गए। सब लोगों को प्रेम विह्वल(और मिलने के लिए अत्यंत आतुर देखकर खर के शत्रु कृपालु श्री राम जी ने एक चमत्कार किया।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला । जथाजोग मिले सबहि कृपाला ॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी । किए सकल नर नारि बिसोकी ॥

उसी समय कृपालु श्री राम जी असंख्य रूपों में प्रकट हो गए और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले। श्री रघुवीर ने कृपा की दृष्टि से देखकर सब नर-नारियों को शोक से रहित कर दिया।

छन महिं सबहि मिले भगवाना । उमा मरम यह काहुँ न जाना ॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा । आगें चले सील गुन धामा ॥

भगवान् क्षण मात्र में सबसे मिल लिए। शंकर भगवान् कहते हैं, 'हे उमा, यह रहस्य किसी ने नहीं जाना।' इस प्रकार शील और गुणों के धाम श्री राम जी सबको सुखी करके आगे बढ़े।

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥

कौसल्या आदि माताएँ ऐसे दौड़ीं मानों नई ब्यायी हुई गायें अपने बछड़ों को देखकर दौड़ी हों। तब सभी माताओं से प्रभु चरण स्पर्श कर मिले। विशेषकर माता कैकई से बार बार मिले और अपने अवतार को फलित होने का कारण जान उनका अत्यंत आदर किया।

सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद ।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद ॥

तद्पश्चात आनन्दकन्द श्री रामजी अपने महल को चले। आकाश फूलों की वृष्टि से छा गया। नगर के स्त्री, पुरुषों के समूह अटारियों पर चढ़कर उनके दर्शन कर रहे हैं।

कंचन कलस बिचित्र सँवारे । सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनवार पताका केतू । सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥

सोने के कलशों को विचित्र रीति से मणि-रत्नादि से अलंकृत कर और सजाकर सब लोगों ने अपने अपने दरवाजों पर रख लिया। सब लोगों ने मंगल के लिए बंदनवार, ध्वजा और पताकाएँ लगाईं।

बीथीं सकल सुगंध सिंचाई । गजमनि रचि बहु चौक पुराईं ।।
नाना भाँति सुमंगल साजे । हरषि नगर निसान बहु बाजे ।।

सारी गलियाँ सुगंधित द्रवों से सिंचाई गईं। गजमुक्ताओं से रचकर बहुत सी चौकें पुराई गईं। अनेकों प्रकार के सुंदर मंगल साज सजाए गए और हर्षपूर्वक नगर में बहुत से डंके बजने लगे।

कृपासिंधु जब मंदिर गए । पुर नर नारि सुखी सब भए ॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बुलाई । आजु सुघरी सुदिन समुदाई ॥

कृपा के समुद्र श्री रामजी जब अपने महल को गए, तब नगर के स्त्री-पुरुष सब सुखी हुए। गुरु वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों को बुला लिया और कहा आज शुभ घड़ी, सुंदर दिन आदि सभी शुभ योग हैं।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन । रामचंद्र बैठहिं सिंघासन ॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए । सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए ॥

आप सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दीजिए, जिसमें श्री रामचंद्र जी सिंहासन पर विराजमान हों। वशिष्ठ मुनि के सुहावने वचन सब ब्राह्मणों को बहुत ही अच्छे लगे।

कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका । जग अभिराम राम अभिषेका ॥
अब मुनिबर बिलंब नहिं कीजै । महाराज कहँ तिलक करीजै ॥

वे सब अनेकों ब्राह्मण कोमल वचन कहने लगे कि श्री राम जी का राज्याभिषेक संपूर्ण जगत को आनंद देने वाला है। हे मुनिश्रेष्ठ, अब विलंब न कीजिए और महाराज का तिलक शीघ्र कीजिए।

तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ॥

तब मुनि ने सुमन्त्रजी से कहा, वे सुनते ही हर्षित होकर चले। उन्होंने तुरंत ही जाकर अनेकों रथ, घोड़े और हाथी सजाए।

जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ ।
हरष समेत बसिष्ट पद पुनि सिरु नायउ आइ ॥

जहाँ-तहाँ (सूचना देने वाले) दूतों को भेजकर मांगलिक वस्तुएँ मँगाकर फिर हर्ष के साथ आकर वशिष्ठ जी के चरणों में सिर नवाया।

महर्षि वशिष्ठ ने तब श्री राम के राज्याभिषेक की आज्ञा दी ।

प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा । तुरत दिब्य सिंघासन मागा ॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ॥

प्रभु को देखकर मुनि वशिष्ठ जी के मन में प्रेम भर आया। उन्होंने तुरंत ही दिव्य सिंहासन मँगवाया, जिसका तेज सूर्य के समान था। उसका सौंदर्य वर्णन नहीं किया जा सकता। ब्राह्मणों को सिर नवाकर श्री रामचंद्र जी उस पर विराज गए।

जनकसुता समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ॥
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ॥

श्री जानकी जी के सहित रघुनाथजी को देखकर मुनियों का समुदाय अत्यंत ही हर्षित हुआ। तब ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का उच्चारण किया। आकाश में देवता और मुनि 'जय, हो, जय हो' ऐसी पुकार करने लगे।

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा । पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी । बार बार आरती उतारी ॥

सबसे पहले मुनि वशिष्ठ जी ने तिलक किया। फिर उन्होंने सब ब्राह्मणों को(तिलक करने की आज्ञा दी। पुत्र को राजसिंहासन पर देखकर माताएँ हर्षित हुईं और उन्होंने बार-बार आरती उतारी।

बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं॥

उन्होंने ब्राह्मणों को अनेकों प्रकार के दान दिए और संपूर्ण याचकों को अयाचक बना दिया। त्रिभुवन के स्वामी श्री रामचंद्र जी को(अयोध्या के सिंहासन पर विराजित देखकर देवताओं ने नगाड़े बजाए।

इस प्रकार प्रभु श्री राम अवध के सम्राट बने। यह कार्तिक अमावस्या का दिवस था, अतः श्री राम भक्तों ने इस दिवस को दीपावली के रूप में मनाना प्रारम्भ कर दिया।

दादा जी तब बोले, 'बच्चो, अब रात्रि अधिक हो चुकी है। अब सोने की तैयारी करो। कल रात्रि को मैं तुम्हें द्वापर युग में नरकासुर वध की कथा सुनाऊँगा, जिस के कारण श्री कृष्ण भक्त दीपावली मनाते हैं।

दादा जी के चरण स्पर्श कर तब सब बच्चे सोने चले गए।

नरकासुर वध

बच्चों का किसी प्रकार अगला दिन बीता। उन्हें बड़ी उत्सुकता हो रही थी कि कब रात्रि हो, और दादा जी उन्हें द्वापर युग में श्री भगवान् कृष्ण द्वारा नरकासुर वध की कहा सुनाएं।

रात्रि होने ही सब बच्चे दादा जी के समीप पहुँच गए, और नरकासुर वध कथा सुनाने के लिए आग्रह करने लगे।

तब दादा जी ने बोलना प्रारम्भ किया, 'भगवान् श्री राम के लंकाधिपति रावण से युद्ध पर रावण के शौर्य रूपी पसीने की कुछ बूँदें भूमि पर पड़ गई थीं। उन्हीं पसीने की बूंदों से भूमि से एक आकृति का प्रकाट्य हुआ। चूँकि इस आकृति का प्राकट्य भूमि से हुआ था, श्री राम ने उसे अपने पत्नी सीता (भूमिजा) का भाई मान, उस बच्चे को आश्रय दिया और अपने साथ अयोध्या ले आए। श्री राम के राज्याभिषेक के पश्चात जब सम्राट जनक उनसे मिलने अयोध्या पहुंचे तब श्री राम ने उस बच्चे को सीता के भाई के रूप में परिचय करा उन्हें सौंप दिया। माता भूमि एवं असुर रावण के पसीने से उत्पत्ति होने के कारण इस बच्चे का नामकरण हुआ भौमासुर अर्थात भूमि से उत्पन्न असुर। सम्राट जनक ने भौमासुर का १६ वर्ष तक लालन पालन किया, उसके बाद भूमि देवी अपने पुत्र को उनसे आकर ले गईं।

माँ पृथ्वी के आदेश पर इस बच्चे ने सहस्त्रों वर्ष तक भगवान् विष्णु की स्तुति की। उसकी तपस्या से प्रसन्न हो भगवान् विष्णु उसके सामने प्रगट हुए, और उसे आशीर्वाद देते हुए उसे प्राग्ज्योतिषपुर का सम्राट बना उसका राज्याभिषेक कर दिया।

प्राग्ज्योतिषपुर आज के असम की प्राचीन राजधानी थी, जो गुवाहाटी के निकट बसी हुई थी। प्राग्ज्योतिषपुर को श्री राम के पौत्र, सम्राट कुश के पुत्र अमूर्तराज ने बसाया था। लेकिन कुछ पीढ़ीओं के पश्चात् सम्राट कुश के वंसज कुशीनगर में आ गए और यह राज्य सम्राट विहीन था। भौमासुर सीता का भाई अतः कुश का मामा था, अतः भगवान् विष्णु ने उसे इसी वंश से सम्बंधित होने के कारण उसे वहां का राज्य सौंप

दिया। भगवान् विष्णु ने उसका विवाह विदर्भ की राजकुमारी माया से करा दिया, और विवाह में उपहार स्वरुप एक दुर्भेथ रथ भी दिया।

भगवान् विष्णु का आभार मान प्रारम्भ में तो वह उनका भक्त बन धर्म पूर्वक अपना राज्य करता रहा, लेकिन समय के साथ, चूँकि आखिर उसकी उत्पत्ति हुई तो रावण के पसीने से ही थी, वह अभिमानी बन गया और उसके हृदय में अजेय एवं अमर बनने की भावना जाग्रत हो गई। अजेय एवं अमरता प्राप्त करने के लिए उसने माता कामाख्या की घोर तपस्या की।

उसने माता कामाख्या मंदिर का एक प्रकार से पुनर्निर्माण अपनी राजधानी से कुछ मील दूरी पर किया। प्राचीन काल सतयुग से ही माता कामाख्या तंत्र सिद्धि की स्वामिन के रूप में मानी जाती रहीं हैं। माँ कामाख्या की मंत्र एवं योग साधना से उसने घोर तपस्या की। कहते हैं मन्त्र, "या देवी सर्व भूतेषू मातृ रूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः' के जाप से ही उसने माँ कामाख्या की सिद्धि प्राप्त की।

अभिमानी असुर भौमासुर ने माँ कामाख्या की तपस्या से सिद्धि प्राप्त कर एक प्रकार से अजेय और अमरता का वरदान प्राप्त कर लिया। उसने नर्क लोक पर चढ़ाई कर दी और विजय प्राप्त कर वहां का भी सम्राट बन बैठा, जिससे उसे नरकासुर भी कहा जाने लगा।

लेकिन अब उस पापी का हृदय तो देखो। जिस माँ ने उसे अजेय और अमरता का वरदान प्रदान किया, उसी माँ को अपनी पत्नी बनाने का स्वप्न देखने लगा।

घमंड में चूर असुरराज नरकासुर एक दिन मां भगवती कामाख्या को समक्ष प्रगट होने का आदेश देने लगा। तंत्र मन्त्र की सिद्धि होने से उनके उच्चारण से उसने माँ कामाख्या को अपने समक्ष प्रगट होने को विवश कर दिया। जब माँ प्रगट हुईं तो उन्हें पत्नी बनने का दुराग्रह कर बैठा। कामाख्या महामाया ने नरकासुर की मृत्यु को निकट मानकर उससे कहा कि यदि तुम इसी रात में नील पर्वत पर चारों तरफ पत्थरों के चार सोपान पथों का निर्माण कर दो एवं कामाख्या मंदिर के साथ एक विश्राम गृह बनवा दो, तो मैं तुम्हारी इच्छानुसार पत्नी बन जाऊँगी और यदि तुम ऐसा न कर पाये

तो तुम्हारी मौत निश्चित है। गर्व में चूर असुर ने पथों के चारों सोपान प्रभात होने से पूर्व पूर्ण कर दिये और विश्राम कक्ष का निर्माण कर ही रहा था कि महामाया के एक मायावी कुक्कुट मुर्गे द्वारा रात्रि समाप्ति की सूचना दी गयी। इससे नरकासुर ने क्रोधित होकर मुर्गे का पीछा किया और ब्रह्मपुत्र के दूसरे छोर पर जाकर उसका वध कर डाला। यह स्थान आज भी `कुक्टाचकि' के नाम से विख्यात है। लेकिन इससे समय की अवधि पूर्ण हो गई और वह माँ कामाख्या की शर्त पूरा करने में असमर्थ रहा। अतः माँ कामाख्या उससे क्रोधित होकर उसे शीघ्र नारी द्वारा मृत्यु का श्राप देकर अंतर्ध्यान हो गईं।

यहां बच्चो, इस का विशेष ध्यान देने की आवश्यकता हैं कि माँ ने उसे नारी द्वारा मृत्यु का श्राप क्यों दिया। एक तो उसने माँ रूपेण नारी का अपमान किया, दूसरा उसने माँ से ही किसी भी पुरुष, देवता आदि के हाथों न मरने का वरदान ले लिया था। वह स्वप्न में भी अपनी मृत्यु नारी के हाथों से सोच भी नहीं सकता था, क्योंकि नारी तो उसकी दृष्टि में अबला थी।

इसी मध्य उसकी मित्रता असुर वाणासुर से हो गई। वाणासुर की संगति में वह एक दुराचारी सम्राट बन गया। उसने अपनी शक्ति से इंद्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि सभी देवताओं को पराजित कर दिया। वह साधु संतों को त्रास देने लगा। महिलाओं पर अत्याचार करने लगा। उसने १६ सहस्त्र स्त्रीयों को बंदी बना अपने अन्तः पुर में डाल दिया। जब उसका अत्याचार बहुत बढ़ गया तो देवता व ऋषि मुनि भगवान् श्री कृष्ण की शरण में गए। भगवान् श्री कृष्ण ने उन्हें नराकासुर से मुक्ति दिलाने का आश्वसान दिया। नरकासुर को स्त्री के हाथों मरने का श्राप था इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा को अपना सारथी बना युद्ध में सम्मलित कर उन्हीं की सहायता से कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को नरकासुर का वध कर देवताओं व संतों को उसके आतंक से मुक्ति दिलाई तथा बंदी गृह से सोलह हजार युवतियों को मुक्त करवाया। युवतियां मुक्त तो हो गयीं पर भौमासुर के यहां इतने दिन रहने के कारण सामाजिक विरोधों और मान्यताओं के चलते इन को कोई भी अपनाने को तैयार नहीं था, तब अंत में श्रीकृष्ण ने सभी को आश्रय दिया। उन सभी कन्याओं ने श्रीकृष्ण को पति रूप में स्वीकार किया। श्री कृष्ण उन सब को अपने साथ द्वारिकापुरी ले आए, जहां वे सभी कन्याएं स्वतंत्रता पूर्वक अपनी इच्छानुसार सम्मानपूर्वक रहने लगीं।

जब नरकासुर के त्रास से जगत को चैन और शान्ति मिली, उसी की प्रसन्नता में दूसरे दिन अर्थात कार्तिक मास की अमावस्या को लोगों ने अपने घरों में दीप जला उत्सव मनाया। तभी से कृष्ण भक्त कार्तिक चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी एवं उसके अगले दिन कार्तिक अमावस्या को नारी मुक्ति दिवस के रूप में दीपावली का उत्सव मनाते हैं।

दीपावली पूजन विधि

कार्तिक मास की अमावस्या के दिन माता लक्ष्मी क्षीर सागर से प्रकट हुई थीं। इसी रात्रि को ही श्री लक्ष्मी जी का भगवान् विष्णु से विवाह हुआ था। माँ लक्ष्मी को प्रसन्न करने हेतु ताकि हमारे जीवन में धन-धान्य की सदैव वर्षा होती रहे, हम दिवाली की रात्रि को माँ लक्ष्मी का पूजन करते हैं। किसी भी पूजन में सर्व प्रथम 'प्रथम पूज्य विघ्न विनाशक श्री गणेश जी' का पूजन आवश्यक होता है, अतः यह दिवाली पूजन भी श्री गणेश स्तुति से ही प्रारम्भ किया जाता है।

पूजन सामग्री : अगर संभव हो सके तो निम्न पूजन सामग्री की व्यवस्था कर लें।

कलावा, रोली, सिंदूर, अक्षत, फूल, पंचामृत (दूध, दही, घी, शहद, तुलसी), फल, मिठाईयां, पूजा में बैठने हेतु आसन, अगरबत्ती, आरती की थाली। जितनी पूजन सामग्री सुलभता से उपलब्ध हो सके, उतनी ही करें। अगर सब सामग्री उपलब्ध न हो सके, तो इसके लिए व्यथित होने की आवश्यकता नहीं है। ध्यान रखें कि देवी-देवता भाव देखते हैं, कर्मकांड की उतनी महत्वा नहीं।

पर्वोपचार: जिस स्थान पर श्री गणेश एवं माँ लक्ष्मी की प्रतिमा स्थापित करनी हो वहां कुछ चावल रखें, फिर उस स्थान पर क्रमश: श्री गणेश और माँ लक्ष्मी की मूर्ति रखें। ऐसी मान्यता है कि माँ लक्ष्मी के साथ भगवान् विष्णु की मूर्ति भी माँ के बायीं ओर रखनी चाहिए। सभी पूजन सामग्री भी मूर्तिओं के सामने रख दें।

आसन बिछाकर श्री गणपति एवं माँ लक्ष्मी की मूर्ति के सम्मुख परिवार सहित बैठ जाएं। इसके बाद अपने आपको तथा आसन को इस मंत्र से शुद्धि करें।

ऊं अपवित्र : पवित्रोवा सर्वावस्थां गतोऽपिवा ।
य: स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तर: शुचि : ॥

इस मन्त्र के उच्चारण के साथ आसन पर, अपने पर एवं अपने परिवार के सदस्यों पर ३-३ बार कुशा या पुष्पादि से छींटें लगायें, फिर आचमन करें।

ऊं केशवाय नमः । ऊं माधवाय नमः । ऊं नारायणाय नमः ।

फिर हाथ धोएं और निम्न शुद्धि मंत्र का उच्चारण करें।

ऊं पृथ्वी त्वयाधृता लोका देवि त्यवं विष्णुनाधृता ।
त्वं च धारयमां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

शुद्धि और आचमन के बाद चंदन लगाएं। चंदन लगाते हुए निम्न मन्त्र का उच्चारण करें।

चन्दनस्य महत्पुण्यम् पवित्रं पापनाशनम् ।
आपदां हरते नित्यम् लक्ष्मी तिष्ठतु सर्वदा ।।

इसके पश्चात् अपने एवं समस्त परिवार के हाथों पर कलावा लगाएं।

गणपति पूजन : हाथ में पुष्प लेकर गणपति का ध्यान करें।

गजाननम्भूतगणादिसेवितं कपित्थ जम्बू फलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोक विनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम् ।।

इसके पश्चात श्री गणेश जी की आरती करें।

जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा ।
माता जाकी पार्वती पिता महादेवा ।।
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा ।

एकदंत दयावंत चार भुजा धारी।
माथे सिंदूर सोहे मूसे की सवारी।।
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डूअन का भोग लगे संत करे सेवा।।
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।
अंधन को आँख देत कोढ़िन को काया।
बांझन को पुत्र देत निर्धन को माया।।
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।
सूर शाम शरण आये सफल कीजिये सेवा।
जय गणेश जय गणेश जय गणेश देवा।।
माता जाकी पार्वती पिता महादेवा।।

माँ लक्ष्मी पूजन : श्री गणेश जी के पूजन के पश्चात अब माँ लक्ष्मी जी का पूजन उनकी आरती से करें।

ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशिदिन सेवत, हरि विष्णु धाता।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
उमा, रमा, ब्राह्माणी, तुम ही जग माता।
सूर्य चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
दुर्गा रुप निरन्जनी, सुख सम्पत्ति दाता।
जो कोई तुमको ध्याता, ऋद्धि-सिद्धि पाता।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
तुम पाताल निवासिनी, तुम ही शुभ दाता।
कर्म प्रभाव प्रकाशिनी, भवनिधि की त्राता।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता।
जिस घर में तुम रहती, सब सदगुण आता।
सब सम्भव हो जाता, मन नही घबराता।।

ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न कोई पाता ।
खान – पान का वैभव, सब तुमसे आता ।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
शुभ - गुण मंदिर सुन्दर, क्षीरोदधि जाता ।
रत्न चतुर्दश तुम बिन, कोई नही पाता ।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
महालक्ष्मी जी की आरती जो कोई जन गाता ।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता ।।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
ॐ जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
तुमको निशिदिन सेवत, हरि विष्णु धाता ।।

जगदीश आरती: माँ लक्ष्मी की आरती के पश्चात जगदीश आरती का गान करें।

ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
भक्तजनों के संकट क्षण में दूर करे ॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
जो ध्यावै फल पावै, दुख बिनसे मन का ।
सुख-संपत्ति घर आवै, कष्ट मिटे तन का ॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूं मैं किसकी ।
तुम बिनु और न दूजा, आस करूं जिसकी ॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
तुम पूरन परमात्मा, तुम अंतरयामी ।
पारब्रह्म परेमश्वर, तुम सबके स्वामी ॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।
तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्ता ।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता ॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे ।

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं दयामय तुमको मैं कुमति॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
दीनबंधु दुखहर्ता, तुम ठाकुर मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, संतन की सेवा॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
तन-मन-धन और संपत्ति, सब कुछ है तेरा।
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
जगदीश्वरजी की आरती जो कोई नर गावे।
कहत शिवानंद स्वामी, मनवांछित फल पावे॥
ॐ जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुन्दर सावरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥
एही भाँति गौरी असीस सुनी सिय सहित हिय हरषीं अली।
तुलसी भवानी पूजी पुनि-पुनि मुदित मन मन्दिर चली॥
जानी गौरी अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मञ्जुल मङ्गल मूल बाम अङ्ग फरकन लगे॥

आरती के पश्चात भगवान् एवं माँ को प्रणाम करें और सबको आरती दें। तद्पश्चात सबको प्रसाद वितरण करें।

विघ्नविनाशक श्री गणेश, माँ लक्ष्मी एवं भगवान् विष्णु आप पर और आपके परिवार पर सदैव प्रसन्न रहें।

बही-खाता पूजन विधि: दीपावली से हिन्दू नव-वर्ष भी प्रारम्भ होता है। अतः इस दिन नया बही खोता खोल उसकी पूजा की जाती है।

नए बही खाते के पूजन हेतु उपरोक्त विधि से श्री गणेश, माँ लक्ष्मी एवं जगदीश आरती के पश्चात नए खाता पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लाल कुमकुम से स्वास्तिक का चिह्न बनाएं।

स्वास्तिक के चिह्न के नीचे '**ॐ श्री गणेशाय नमः**' लिखें। उसके बाद '**श्री लक्ष्मी सदाय सहाय**' एवं '**शुभ लाभ**' लिखें।

इसके पश्चात बही खाते पर पुष्प चढ़ाएं, और रोली चावल छिड़कें। फिर बही खाते को प्रणाम कर उसे उपयोग में लाना प्रारम्भ कर दें।

कथाकार

डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्था 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्था श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।